एम.ए.

सत्र - १

प्रश्न पत्र क्र. ५

भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा

(Linguistics and Hindi Language)

विषय कोड : 73486

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्राध्यापक सुहास पेडणेकर
कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक रविंद्र द. कुलकर्णी
प्र-कुलगुरु,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक प्रकाश महानवार
संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

कार्यक्रम समन्वयक : **डॉ. संध्या एस. गर्जे**
सहायक प्राध्यापक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

संपादक : **प्रा. अनिल गोविंद चौधरी**
सहायक प्राध्यापक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

लेखक : **डॉ. उद्धव भंडारे**
सहयोगी प्राध्यापक,
चांगु काना ठाकूर कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
न्यू पनवेल, फ्लॉट नं. १, सेक्टर - ११, खांदा कॉलनी,
न्यू पनवेल (ई), जि. रायगड - ४१०२०६

मार्च २०२१, मुद्रण - १

प्रकाशक : संचालक, दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ,
विद्यानगरी, मुंबई -४०० ०९८.

अक्षर जुळणी : अश्विनी आर्टस्,
विलेपार्ले (पूर्व), मुंबई - ४०० ०९९.

मुद्रण :

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
	सत्र - १	
१.	भाषा	०१
२.	भाषा विज्ञान	११
३.	भाषा विज्ञान का अध्ययन एवं प्रकार	१९
४.	स्वन विज्ञान	३४
५.	स्वन परिवर्तन	५०
६.	हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	६३
७.	हिंदी का वाक्य विन्यास	८३

❖❖❖❖

पाठ्यक्रम

Semester - I (प्रथम सत्र)

Course Code : PAHIN 105

प्रश्न पत्र - ५

भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा

(Linguistics and Hindi Language)

कुल श्रेयांक (Credit) = 6

खंड : क

इकाई एक **श्रेयांक - २**

१. भाषा : भाषा की परिभाषा, अभिलक्षण, भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार, भाषा संरचना और भाषिक प्रकार्य

२. भाषा विज्ञान : भाषा विज्ञान का नामकरण, परिभाषा, स्वरूप और व्याप्ति
भाषा विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र, अध्ययन की दिशाएँ,
भाषा विज्ञान के प्रकार - अनुप्रयुक्त और व्यतिरेकी भाषा विज्ञान

इकाई दो **श्रेयांक - १**

३. स्वन विज्ञान : परिभाषा, स्वरूप, वाग अवयव और उनके कार्य,
स्वनिम की विशेषताएँ, स्वनिम के भेद - खंड्य
स्वनिम, खंडयेतर स्वनिम, स्वन परिवर्तन की दिशाएँ, स्वन परिवर्तन के कारण, हिंदी स्वरों तथा व्यंजनो का वर्गीकरण

खंड : ख

इकाई तीन **श्रेयांक - २**

१. हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :
प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ - वैदिक तथा लौकिक संस्कृत और उसकी विशेषताएँ
मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ - पालि, प्राकृत, शौरसेनी, अर्धमागधी, अपभ्रंश और उनकी विशेषताएँ
आधुनिक भारतीय भाषाओं का सामान्य परिचय - मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, तेलुगु, कन्नड, तमिल, मलयालम

इकाई चार **श्रेयांक - १**

१. हिंदी का वाक्य विन्यास : पद, पदक्रम, वाक्य के भेद (अर्थ एवं रचना के आधार पर)

संदर्भ ग्रंथ :

१) भाषा विज्ञा : डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

३) हिंदी भाषा का उद्गव और विकास - डॉ. उदय नारायण तिवारी

४) हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी

५) भाषिकी, हिंदी भाषा तथा भाषा शिक्षण - डॉ. अंबादास देशमुख

६) भाषा विज्ञान के अधुनातन आयाम - डॉ. अंबादास देशमुख

७) सामान्य भाषा विज्ञान सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. विद्यासागर दयाल

८) वर्ण विज्ञान - श्री. प्रभात रज्जन सरकार

९) भाषाशास्त्र तथा हिंदी भाषा की रूपरेखा - डॉ. देवेंद्र कुमार शास्त्री

१०) हिंदी व्याकरण प्रकाश - डॉ. महेंद्र कुमार राना

११) भाषा विज्ञान की रूपरेखा - द्वारका प्रसाद सक्सेना

१२) नागरी लिपि : रूप और सुधार - मोहन ब्रज

१३) हिंदी उद्गव विकास और रूप - हरदेव बाहरी

१४) भाषा और भाषिका - डॉ. देवीशंकर द्विवेदी

१५) सामान्य भाषा विज्ञान - डॉ. बाबूराम सक्सेना

१६) हिंदी भाषा एवं भाषा विज्ञान - डॉ. महावीरसरन जैन

१७) आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धांत - डॉ. रामकिशोर शर्मा

१८) भाषा - सं. राजमल बोरा

१९) भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा स्वरूप का विकास - डॉ. देवेंद्र सिंह

२०) भाषा विज्ञान - रमेश रावत

२१) भाषा और सूचना प्रद्यौगिकी - डॉ. अमर सिंह वधान

२२) भाषा प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबंधन - रामगोपाल शर्मा

२३) हिंदी भाषा : कल और आज - पूरनचंद टंडन

२४) हिंदी भाषा, व्याकरण और रचना - डॉ. अर्जुन तिवारी

२५) भारतीय भाषा विज्ञान - आचार्य किशोरदास वाजपेयी

२६) आधुनिक भाषा विज्ञान - राजमणि शर्मा

२७) हिंदी भाषा : इतिहास और स्वरूप - राजमणि शर्मा

२८) भाषा और प्रौद्योगिकी - डॉ. विनोद प्रसाद

२९) भाषा शिक्षण - रवींद्रनाथ श्रीवास्तव

३०) हिंदी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३१) हिंदी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३२) राजभाषा हिंदी - कैलाशचंद्र भाटिया

३३) भाषा की उत्पत्ति, रचना और विकास - विनोद दिवाकर

३४) हिंदी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु

३५) हिंदी वर्तनी का विकास - अनिता गुप्ता

३६) हिंदी का विश्व संदर्भ - डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय

३७) हिंदी भाषा एक अवाध प्रवाह - डॉ. सुमन सिंह

३८) देवनागरी विमर्श - सं. शैलेंद्रकुमार शर्मा

❖❖❖❖

इकाई-१

भाषा

इकाई की रूपरेखा :

१.१ इकाई का उद्देश्य
१.२ प्रस्तावना
१.३ भाषा की परिभाषा
१.४ अभिलक्षण
१.५ भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार
१.६ भाषा संरचना
१.७ भाषिक प्रकार्य
१.८ सारांश
१.९ लघुत्तरीय प्रश्न
१.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न
१.११ संदर्भ ग्रंथ

१.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा ।

i) भाषा की अवधारणा तथा उसका स्वरूप स्पष्ट होगा ।
ii) भाषा की परिभाषा तथा उसके अभिलक्षण से परिचय होगा ।
iii) व्यवस्था और व्यवहार के रूप में भाषा की भूमिका स्पष्ट होगी ।
iv) भाषा की संरचना से परिचय होगा ।
v) भाषा की प्रकार्य क्या है, इसकी जानकारी मिलेगी ।

१.२ प्रस्तावना

भाषा, मानव-समाज का आधार है । बिना भाषा के मनुष्य का सामाजिक जीवन असंभव है । प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मनुष्य की प्रत्येक गतिविधि के मूल में भाषा ही होती हैं । भाषा के बारे में बात करनी हो तो भी भाषा की ही मदद लेनी पड़ती है । इस धरती पर कोई मानव-समाज नहीं जिसकी अपनी भाषा न हो । मानव विकास का मूल आधार भी भाषा ही है । मानव सभ्यता की प्रक्रिया भी भाषा के साथ और भाषा के सहारे ही विकसित हुई । लगभग ७०,००० साल पहले मानव-समाज में भाषा का जन्म हुआ और तब से अनवरत भाषा विकसित, परिवर्तित होती रही और मरती भी रही । १०,००० बरस पहले वर्तमान भाषाएँ अपना रूपाकार ग्रहण करने लगीं । यह वह समय था जब मानव समुदाय कृषि - यूनेस्को के अनुसार पूरी दुनिया

में कुल ७,००० भाषाएँ हैं । जिनमें से दो तिहाई भाषाएँ तेजी से नष्ट होने की राह पर हैं । हमारे अपने देश में ही लगभग तीन सौ भाषाएँ मरणावस्था में हैं । भाषा कोई जड़ अवधारणा या सिर्फ सूचना प्रदान करने का माध्यम भर नहीं हैं । विगत दस हजार बरसों में किसी भाषा विशेष में जो चिंतन-मनन हुआ है । करोड़ों लोगों की अरबों अभिव्यक्तियाँ हैं उन सबका संचित कोश होती है, भाषा ।

मनुष्य अपने परिवेश में अपने बौद्धिक सामर्थ्य के आधार पर अनुकरण के माध्यम से बड़ी सहजता से भाषा अर्जित कर लेता है । भाषा, उसके लिए सहज उपलब्ध होती है अतः वह भाषा के अध्ययन को लेकर प्रायः सजग या गंभीर नहीं होता । जिसे हम आधुनिक भाषा विज्ञान कहते हैं उसका इतिहास सौ-सवा सौ वर्षों से अधिक का नहीं है । हाँलाकि भारत में भाषा के प्रति सजग भाव वैदिक काल में ही उत्पन्न हो चुका था । दुनिया में सबसे पहले भाषिक ध्वनियों पर अध्ययन भारत में ही आरंभ हुआ । प्रस्तुत इकाई में हम 'भाषा' की अवधारणा स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे ।

१.३ परिभाषा

'भाषा', शब्द 'भाष' धातु से विकसित हुआ है जिसका अर्थ है, 'बोलना' या 'कहना' । इसका प्रयोग सामान्य रूप से मनुष्यों की भाषा के लिए किया जाता है । हाँलाकि पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवों की भी अपनी भाषा होती हैं ।

डॉ. मंगलदेव शास्त्री के अनुसार "'भाषा' मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरोवयवों से उच्चारण किए गए वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं । (व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः - महाभाष्य १/३/४८)"

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार, समीक्षक प्राध्यापक और चिंतक भालचंद्र नेमाडे के अनुसार "मानवीय संप्रेषण की व्यवस्था ही भाषा है।"

डॉ. मिलिंद मालशे भाषा को समाजीकरण की प्रक्रिया का अविभाज्य अंग मानते हैं ।

प्लेटो के अनुसार 'विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं ।'

'स्वीट' कहते हैं - 'ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा हैं ।'

वांद्रिए भाषा को प्रतीकात्मक चिन्ह मानते हैं - भाषा एक प्रकार का चिन्ह है । चिन्ह से आशय उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मानव अपना विचार दूसरों पर प्रकट करता है । ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं, जैसे नेत्रग्राह्य, श्रोत्रग्राह्य और स्पर्शग्राह्य । वस्तुतः भाषा की दृष्टि से श्रोत्रग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ हैं ।

ब्लॉक तथा ट्रेगर के अनुसार - A language is a system of arbitrary vocal symbols of means of which of society group cooperates.

स्त्रुत्वाँ इसमें कुछ और भी जोड़ देते हैं - A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which members of a social group cooperates and interact.

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका लिखता है - Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which human beings, as members of a social group and participants in culture interact and communicate.

डॉ. भोलानाथ तिवारी उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को समन्वित करते हुए कहते हैं - 'भाषा, मनुष्य के उच्चारण अवयवों से उच्चारित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह सार्थक व्यवस्था है जिसके माध्यम से एक विशिष्ट भाषिक समुदाय का व्यक्ति कहकर, बोलकर, लिखकर अपने भावों, विचारों को अभिव्यक्त करता हैं ।'

इन परिभाषाओं के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि -

- भाषा संप्रेषण का माध्यम है ।
- भाषा का प्रयोग विशिष्ट समुदाय के अंतर्गत होता है ।
- भाषा मनुष्य के उच्चारण अवयवों से उच्चरित स्वनों का समूह हैं ।
- भाषा में उच्चरित स्वन समूह यादृच्छिक होते हैं ।
- भाषा एक सुचिंतित व्यवस्था है ।
- भाषा अनुकरण के माध्यम से अपने परिवेश से सीखी जाती है ।

यह सच है की मनुष्य की भाषा पशु-पक्षियों की भाँति सहजात नहीं होतीं । जिस प्रकार पशु पक्षी जनमते ही बिना किसी प्रयास के बोलने लगते हैं, उस प्रकार मनुष्य नहीं बोल पाता । उसे भाषा संप्रयास सीखनी पड़ती है । इतना ही नहीं वह प्रयत्न करके अन्य कई भाषाएँ भी सीख सकता है जो मानवेत्तर जीवों के लिए असंभव है । भाषा सीखने और प्रयोग करने की कला मनुष्य ने लाखों वर्षों में अर्जित की हैं । मनुष्य के मस्तिष्क में कुछ विशिष्ट स्थान ऐसे होते हैं जहाँ ध्वनियों का संग्रह, शब्द निर्माण, वाक्य रचना आदि का निर्माण होता है जिन्हें वाक अवयवों के माध्यम से उच्चरित रूप प्रदान किया जाता है । अतः भाषिक सामर्थ्य मानव समाज ने लाखों वर्षों के प्रयास से अर्जित किया तथा विशिष्ट भाषा का अर्जन मनुष्य अपने व्यक्तिगत प्रयास से करता है । भाषा विज्ञान में मनुष्यों की इसी भाषा का अध्ययन किया जाता है ।

इस उच्चरित भाषा के अतिरिक्त भी मानव समाज में अभिव्यक्ति तथा संप्रेषण की अन्य अभिव्यक्तियाँ बड़ी सहजता से प्रयुक्त होती हैं जिनमें सबसे प्रमुख है हाव - भाव । हँसना, आँखे तरेरना, घूरना, गुर्राना, चीखना, हाथ मिलाना, नाक भौं सिकोडना जैसी शारीरिक क्रियाएँ भी भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं । कभी - कभी ये इतनी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि भाषा के साथ-साथ समानांतर इनका प्रयोग होता है । किंतु महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद इनकी कतिपय सीमाएँ हैं ।

१.४ भाषा के अभिलक्षण

संप्रेषण, किसी भी समुदाय की समूह में जीवन यापन करने वाले जीवों - प्राणीयों की बुनियादी और अनिवार्य आवश्यकता है । मधुमक्खियों की भाषा पर कई अनुसंधान हो चुके हैं और यह प्रमाणित हो चुका हैं कि मधु खोजने और अपने साथियों तक उसकी सटीक सूचना पहुँचाने की उनकी सुनिश्चित संप्रेषण व्यवस्था है । इसी प्रकार अन्य प्राणियों में क्रोध, प्रेम, असुरक्षा, भूख, भय आदि को व्यक्त करने की विशिष्ट ध्वनि पद्धतियाँ हैं जिसका प्रयोग वे सहज रूप से करते हैं और यह संप्रेषण व्यवस्था या भाषा उन्हें आनुवांशिक रूप से प्राप्त होती है । उन्हें मनुष्यों की भाँति भाषा सीखने के प्रयास नहीं करने होते ।

इन मानवेतर भाषाओं के परिप्रेक्ष्य में मानव भाषाओं के कतिपय अभिलक्षण उल्लेखनीय है । अमेरिकी संरचनावाद के भाषावैज्ञानिक एवं नृतत्त्वशास्त्री चार्ल्स एफ हॉकेट ने १९६० में प्रकाशित The origin of speech में भाषा के बुनियादी अभिलक्षणों का उल्लेख किया है । जिनमें प्रमुख अभिलक्षण हैं -

१. यादृच्छिकता (Arbitrariness)
२. आंतरविनिमेयता (Interchangeability)
३. सांस्कृतिकता (Cultural Transmission)
४. विविक्तता (Discreteness)
५. विस्थापन (Displacement)
६. उत्पादकता (Productivity)
७. द्वैतता (Duality)
८. विशेषीकरण (Specialization)
९. सामाजिकता

इनके अतिरिक्त भी कतिपय अभिलक्षण हैं जिनकी चर्चा की जाएगी । अभिलक्षण का अर्थ है विशेष वह विशेषता जो विशिष्ट अवधारणा की पहचान होती है । अंग्रेजी में इसे Features कहते हैं ।

१. यादृच्छिकता :-

यादृच्छिकता का अर्थ है बिना किसी विशिष्ट वजह के मान लेना । मनुष्यों की भाषा में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, उन शब्दों तथा उनके अर्थ के बीच कोई कार्य कारण संबंध या कोई एक उदाहरण से बाद स्पष्ट हो जाएगी । गाय को गाय ही और पेड़ को पेड़ ही क्यों कहा जाता है । इसका कोई ठोस और मान्य कारण नहीं है । 'गाय' शब्द का वर्तनी में भी उस प्राणि विशेष को कोई चिन्ह या सूत्र नहीं है जिससे कि यह प्रमाणित हो सके कि यह शब्द इस प्राणि विशेष से मौलिक रूप से जुड़ा हुआ है । यदि ऐसा होता तो दुनिया की सभी भाषाओं में उसे एक ही 'नाम' से पुकारा जाता । जबकि हम जानते है कि विभिन्न भाषाओं में गाय की विभिन्न संज्ञाएँ हैं ।

अतः भाषिक ध्वनि प्रतीक बुनियादी रूप से यादृच्छिक होते हैं और उनमें तथा उस विशिष्ट वस्तु, जिसके लिए उनका उपयोग होता है, के बीच कोई सहजात संबंध नहीं होता ।

२. आंतरविनिमेयता :-

यह मनुष्यों की भाषा का विशिष्ट अभिलक्षण है । मानवीय भाषिक प्रयोग के दौरान एक व्यक्ति वक्ता भी हो सकता है और श्रोता भी । वक्ता और श्रोता की भूमिकाएँ बातचीत के दौरान बदलती रहती है । जैसे राम यदि रहीम से बातचीत कर रहा है तो राम वक्ता की भूमिका में भी होगा और श्रोता की भूमिका में भी । ठीक वैसे ही रहीम भी । पशु-पक्षियों में प्रायः ऐसा नहीं पाया जाता । नर कोयल जब गाता है तब मादा कोयल सिर्फ श्रोता की भूमिका में ही होती है ।

३. सांस्कृतिकता :-

मानव भाषा आनुवांशिक नहीं होती । वह अपने माता-पिता से जन्मतः प्राप्त नहीं होती जैसे त्वचा, आँखों, बालों का रंग, रूप, आकार । भाषा का अर्जन एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिसे शिशु अपने परिवेश से ग्रहण करता है, अर्जित करता है तथा सक्षम हो जाने पर अन्य भाषाएँ भी सीख सकता है ।

मनुष्य द्वारा भाषा का सीखा जाना मात्र उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की अभिव्यक्ति ही नहीं होती । वह भाषा का सौंदर्यपूरक उपयोग भी करने में सक्षम होता है जब कि मानवेतर जगत में भाषा सहजात वृत्तियों से ऊपर नहीं उठ पाती ।

४. विविक्तता :-

मनुष्य की भाषा में स्वनों से शब्द बनते हैं, शब्दों से वाक्य और वाक्य से प्रोक्ति । न्यूनतम इकाई से आरंभ हुई भाषा एक संपूर्ण अभिव्यक्ति तक अर्थवान होती हुई संप्रेषित होती है । इस समस्त संप्रेषण का सार्थक एवं निरर्थक ध्वनियों में विभाजित किया जा सकता है । एक-एक ध्वनि तथा एक-एक शब्द को, अलग करके भी उनका अध्ययन किया जा सकता है किंतु मानवेतर प्रक्रियों में इस तरह की विविक्तता के लिए कोई स्थान नहीं । कुत्ते का भूँकना या गाय का रँभाना छोटी इकाइयों में बाँटा नहीं जा सकता न तो उनका स्वतंत्र अध्ययन किया जा सकता है ।

५. विस्थापन :-

विस्थापन, मनुष्य की भाषा का महत्त्वपूर्ण गुणधर्म हैं । इस गुणधर्म से ही मनुष्य की भाषा में ज्ञान तथा सूचनाओं का संचयन संभव हो सका । मानवेतर भाषाएँ, स्थान और काल की सीमा में जकड़ी होती हैं । कोई पशु यह नहीं बता सकता है कि वह कल क्या करेगा ? या फिर बीते कल में उस पर क्या बीता था ?

मनुष्य की भाषा देशकाल की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए भूत, वर्तमान, भविष्य तथा अपने वर्तमान स्थाने से सर्वथा भिन्न स्थान या पूर्णतः काल्पनिक देशकाल में भी अपनी अभिव्यक्तियाँ संप्रेषित कर सकने में समर्थ है । भारत में रहते हुए हम अमेरिका ही नहीं दूसरे ग्रहों की बाते भी कर सकते हैं तथा पृथ्वी का जन्म से लेकर आने वाले समय में पृथ्वी के नष्ट होने तक की, संभावनापर भाषा के माध्यम से विचार कर सकते हैं । मनुष्य के ज्ञान की आधार भूमि हैं भाषा का यह अभिलक्षण ।

६. उत्पादकता :-

सुप्रसिद्ध चिंतक और भाषा विज्ञानी नोऑम चॉम्स्की का कहना है - 'भाषा सीमित नियमों के माध्यम से असीमित वाक्यों को प्रजनित करनेवाली व्यवस्था है ।'

अंग्रेजी में २६ अक्षर हैं तो देवनागरी में लगभग ५२ अक्षर किंतु इन अक्षरों से लाखो शब्द बनाये जा सकते है और इन लाखों शब्दों से करोड़ों वाक्यों की रचना की जा सकती है । इन वाक्यों को विभिन्न कालो, वचनों, कारकों में पुनः रचा जा सकता हैं । पुनरूत्पादन की यही प्रक्रिया भाषा में उत्पादकता कहलाती है । इतना ही नहीं एक ही वाक्य का विभिन्न लहजे में, भिन्न भावों और संवेदनाओं के तहत ध्वनियों के उतार चढाव के माध्यम से भी अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है ।

७. द्वैतता :-

द्वैतता अथवा संरचनागत द्वित्व मानव भाषा का एक और प्रमुख अभिलक्षण है । भाषा की संरचना दो स्तरों पर अभिव्यक्त होती है । किसी शब्द में जो स्वर-व्यंजन-अक्षर होते हैं वे प्रायः निरर्थक होते हैं । फिर उनसे जो शब्द बनते हैं । इसके पश्चात् इनसे जो वाक्य बनते हैं वे भी एकाधिक अर्थ की अभिव्यक्ति करने में समर्थ होते हैं । इस तरह भाषा संरचना और अर्थ के स्तर पर कई रूप धारण करती है ।

जैसे मानव शब्द में म + आ + न् + अ + व + अ स्वतंत्र ध्वनियाँ होती हैं जिनका अपना कोई अर्थ नहीं होता किंतु इनसे बना 'मानव' शब्द का एक ओर मनुष्यों के लिए प्रयुक्त होता वे दूसरे 'मनु' शब्द का विशेषण भी मानव हैं ।

८. विशेषीकरण :-

मनुष्य की भाषा एक विशिष्ट प्रयास का प्रतिफल होती है । यदि कोई व्यक्ति हँस रहा हो तो उससे उसकी खुशी का पता चल जाता है किंतु उसे जब यही भाव भाषा के माध्यम से व्यक्त करने हो तो उसे विशिष्ट शब्दों, विशिष्ट वाक्य रचना तथा लहजे का प्रयोग करना पड़ता है तब जाकर उसकी खुशी या आनंद की अभिव्यक्ति हो पाती है । यह विशिष्ट प्रयास ही भाषा का अनोखा अभिलक्षण है ।

९. सामाजिकता :-

भाषा समाज में ही पैदा होती है और उसका प्रयोग भी विशिष्ट भाषिक समाज में ही होता है । भाषिक प्रयुक्तियों के विशिष्ट सामाजिक संदर्भ भी होते हैं जिन्हें भलीभाँति समझे बिना भाषा को सही अर्थों में समझना मुश्किल होगा । प्रत्येक समाज जीवनयापन की जिस व्यवस्था में होता है, उसका प्रभाव, उसकी भाषा पर पड़ता है । ग्रामीण, वनवासी, शहरी, कस्बाई और महानगरीय समाज की भाषाओं में जो फर्क होता है, उसकी यही वजह होती है । बंजारे या घुमंतू जातियों की भाषा स्थिर समाज की भाषा से नितांत भिन्न होती है । इसी तरह विभिन्न धार्मिक समाजों की भाषा में भी धार्मिक मान्यताओं, रीति रिवाजों, संस्कारों आदि की वजह से भी परिवर्तन देखने को मिलता है ।

इनके अतिरिक्त भाषा के और भी अभिलक्षण हैं जो उसे विशिष्ट बनाते हैं।

१.५ भाषा - व्यवस्था और भाषा व्यवहार

भाषा व्यवस्था तथा भाषा व्यवहार की दृष्टि से भाषा अध्ययन की शुरुआत एफ. डी. सस्यूर ने की । सस्यूर का जन्म जिनेवा में २६ नवंबर १८५७ में हुआ । वे स्विस भाषा वैज्ञानिक तथा चिंतक थे । इन्हें आधुनिक भाषाविज्ञान का जनक भी कहा जाता है । ५५ वर्ष की आयु में २२, फरवरी १९१३ का स्विट्जरलैंड में उनका निधन हुआ ।

भाषा संबंधी उनकी प्रमुख स्थापनाएँ इस प्रकार है -

१. सस्यूर भाषा के दो पक्ष मानते हैं - विचार और ध्वनि । विचार मानसिक होते हैं जब कि ध्वनि भौतिक सत्ता है । ध्वनि पदार्थ है और भाषा अमूर्त है ।

२. सस्यूर भाषा को संकेत व्यवस्था मानते हैं । उनका कहना है कि भाषा वह संकेत (चिन्ह) है जो संकेतक से माध्यम से संकेतित को व्यक्त करता है । जैसे 'गाय' एक शब्द संकेत है जिसे सुनकर या पढ़कर हमारे मन में गाय का बिंब उपजता है, जिससें हमें 'गाय' नामक प्राणी का बोध होता है । यहाँ 'गाय' शब्द संकेत हैं, गाय का बिंब संकेतक है और गाय नामक प्राणी संकेतित है ।

३. सस्यूर भाषा को संकेत चिन्ह मीमांसा के रूप में ही देखने का आग्रह करते हैं ।
सस्यूर ने भाषा के दो पक्ष सुझाए । एक को Langur कहा और दूसरे को Parola डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तवने एक को भाषा व्यवस्था कहा और दूसरे को भाषा - व्यवहार ।
सस्यूर के अनुसार प्रत्येक भाषा एक भाषिक अर्थात चिन्हात्मक व्यवस्था होती है । यह व्यवस्था मानक, आदर्श और स्थिर होती है । इस व्यवस्था के तहत व्यक्ति जब भाषा का प्रयोग करता है तो वह भाषा व्यवहार कहलाता है ।

जैसे जब हम हिंदी - भाषा कहते है । तब एक विशिष्ट भाषा का बोध होता है जिसकी अपनी व्याकरणिक व्यवस्था है, जिसके अपने मानक रूप है, मानक उच्चारण हैं, अपनी ध्वनि, रूप, वाक्य व्यवस्था है । किंतु यही हिंदी जब हिमाचल प्रदेश से हैदराबाद तक बोली जाती है तो वह एक सरीखी नहीं होती । स्वयं उत्तर प्रदेश के विभिन्न इलाकों में वह एक-सी नहीं बोली जाती । विभिन्न व्यवसाय, विभिन्न जातियाँ; विभिन्न धार्मिक समाज, नागर, ग्रामीण, शिक्षित-अशिक्षित जनों की भाषा भी बिल्कुल अलग होती हैं । फिर भी वह कहलाता है हिंदी भाषा ।

तो जो हिंदी की आदर्श, स्थिर, सर्व स्वीकृत मानक व्यवस्था है । वह भाषा व्यवस्था हैं । प्रत्येक भाषा की अपनी यह विशिष्ट व्यवस्था होती है । किंतु इस व्यवस्था के तहत भाषा का रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग करनेवाला विशाल जन समूह जिस भाषा का प्रयोग करता है । वह भाषा व्यवहार है जो व्यवस्था का अभिन्न अंग होने के बावजूद सर्वथा भिन्न है ।

१.६ भाषा संरचना और भाषिक प्रकार्य

भाषा संरचना की अवधारणा भी सस्यूर की ही दी गई हैं । उन्होंने भाषा के तीन पक्ष स्वीकार किए है - व्यक्तिगत, सामाजिक तथा सर्वव्यापक । वस्तुतः ये भाषा प्रयोग के तीन स्तर हैं । वैसे भाषा के दो ही पक्ष होते हैं - अनुभूति और अभिव्यक्ति । भाषा विज्ञान में अभिव्यक्ति का अर्थ है ध्वन्यात्मकता तथा अनुभूति स्वनों के द्वारा व्यक्त आशय है ।

अभिव्यक्ति पक्ष में ध्वनि और व्याकरण का संयुक्त समावेश होता है ।
भाषा संरचना का स्वरूप कुछ इस प्रकार होता हैं -

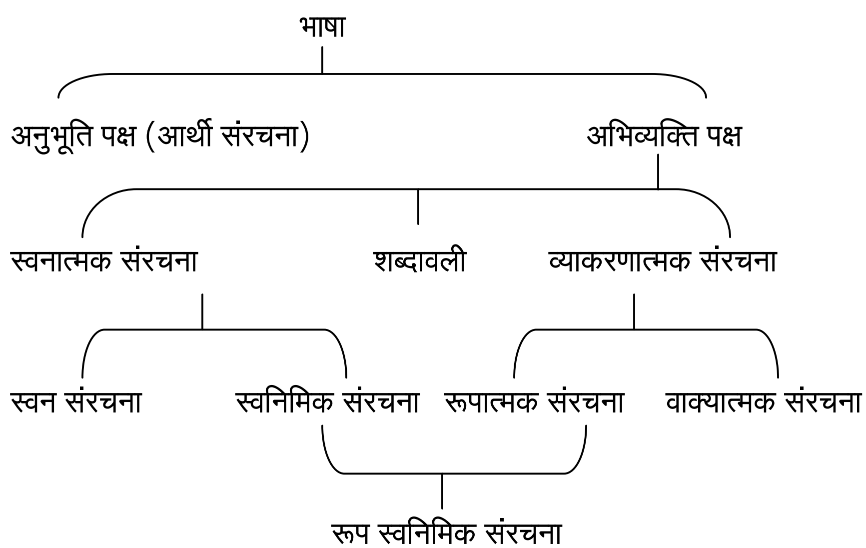

आधुनिक भाषा विज्ञान स्वन तथा अर्थ संरचना को प्रमुख नहीं मानता । उसकी दृष्टि से स्वनिमिक, रूपात्मक तथा वाक्यात्मक संरचना को ही महत्त्व दिया जाता है ।

१.७ भाषिक प्रकार्य :-

यह अवधारणा भी आधुनिक भाषा विज्ञान की ही देन है । रूस में जनमें किंतु अमेरिका को कार्यक्षेत्र बनानेवाले रोमन जाकोब्सन भी संरचनात्मक भाषा विज्ञान के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं । उन्होंने भाषा के छह प्रकार्य बताए हैं । उनके अनुसार भाषा का मूल प्रकार्य संप्रेषण है । संप्रेषण के दौरान छह विभिन्न तथ्य जब उसके केंद्र में आ जाते हैं तो प्रकार्य के छह भेद बन पाते हैं । जो इस प्रकार हैं -

१. अभिव्यक्तिपरक प्रकार्य (Expressive Function) :-

जब संप्रेषण के केंद्र में 'वक्ता' होता है और वह अपनी निजी अनुभूतियों को व्यक्त करता है तो उसे अभिव्यक्तिपरक प्रकार्य कहते हैं ।

जैसे - आज मैंने एक कविता लिखी ।

२. प्रभावपरक प्रकार्य (Conative Function) :-

इस संप्रेषण के केंद्र में 'श्रोता' होता है । इस संप्रेषण का उद्देश्य श्रोता को प्रभावित करना होता है । इसमें आदेश, निवेदन, प्रार्थना, सल्लाह या सवाल किए जाते हैं ।

जैसे - आप सभी को कानून का पालन करना चाहिए ।

३. काव्यात्मक प्रकार्य (Poetic Function) :-

इसके केंद्र में 'संदेश' होता है जिसे सौंदर्यात्मक, कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है । पाठक भी श्रोता इसे पढ़कर भी सुनकर वह 'संदेश' ग्रहण करते हैं ।

जैसे - साँच बराबर तप नहीं । झूठ बराबर पाप ।।

४. संदर्भपरक प्रकार्य (Referential Function) :-

इस अभिव्यक्ति के केंद्र में 'संदर्भ' होता है । इसमें वक्ता के कथन को समझने के लिए श्रोता द्वारा 'संदर्भ' को समझना आवश्यक होता है ।

जैसे घर का भेदी लंका ढाये (संदर्भ - विभीषण)

५. अधिभाषिक या पराभाषिक प्रकार्य (Metalinguistic Function) :-

इस संप्रेषण के केंद्र में 'कोड' होता है । वह 'कोड' परिभाषिक होता है जिसे समझने के लिए 'कोड' को व्याख्या करना जरूरी होता है ।

जैसे 'गुरूत्त्वाकर्षण बल के कारण ही सेब धरती पर गिरा' इस अभिव्यक्ति के गुरूत्त्वाकर्षण बल की व्याख्या अपेक्षित है ।

६. संबंधपरक प्रकार्य (Phatic Function) :-

इस अभिव्यक्ति के केंद्र में 'सरणि' या 'सूत्र' होता है । जो वक्ता और श्रोता को जोड़ता है । इस अभिव्यक्ति का उद्देश्य वक्ता और श्रोता के बीच संबंध स्थापित करना होता है ।

जैसे फोन पर बोलते हुए जब हम 'हलो' बोलते हैं तो श्रोता से जुड़ जाते हैं ।

१.८ सारांश

प्रस्तुत अध्याय में विद्यार्थियों ने भाषा, भाषा की परिभाषा, उसके अभिलक्षण, भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार, भाषा संरचना तथा भाषिक प्रकार्य आदि का अध्ययन किया। भाषा के बिना मनुष्य का सामाजिक जीवन अधुरा है। मनुष्य के विकास में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक भाषा से दूसरी भाषा विकसित होती है। साथ ही भाषा का व्यवहार किस तरह होता है, उसे जान सके।

१.९ लघुत्तरीय प्रश्न

१) “विचार आत्मा की मूक का अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते है।” यह किसने कहा ?
२) ‘भाषा’ शब्द किस धातू से विकसित हुआ ?
३) चार्ल्स एफ हॉकेट ने भाषा के किसने अभिलक्षणों का उल्लेख किया है ?
४) सस्यूर भाषा के कितने पक्ष मानते है ?
५) आधुनिक भाषा विज्ञान का जनक कौन है ?
६) ध्वनि पदार्थ है, तो भाषा क्या है ?
७) भाषिक प्रकार्य के कितने भेद है ?

१.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भाषा की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए भाषा के अभिलक्षण की चर्चा करें ?
२) व्यवस्था और व्यवहार के रूप में भाषा की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

१.११ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य
२) भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी
३) भाषा और भाषा विज्ञान - गरिमा श्रीवास्तव

❖❖❖❖

इकाई-२

भाषा विज्ञान

इकाई की रूपरेखा :

२.१ इकाई का उद्देश्य
२.२ प्रस्तावना
२.३ भाषा विज्ञान का नामकरण
२.४ भाषा विज्ञान की परिभाषा
२.५ भाषा विज्ञान का स्वरूप और व्याप्ति
२.६ सारांश
२.७ लघुत्तरीय प्रश्न
२.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न
२.९ संदर्भ ग्रंथ

२.१ इकाई का उद्देश्य

उक्त इकाई के अंतर्गत सम्मिलित बिंदुओं के माध्यम से पाठकों को निम्नलिखित जानकारियाँ दिए जाने का उद्देश्य निहित है।

i) भाषा विज्ञान के नामकरण की जानकारी छात्रों को देना।
ii) भाषा विज्ञान की परिभाषा को स्पष्ट करना।
iii) भाषा विज्ञान का स्वरूप और व्याप्ति पर प्रकाश डालना।

२.२ प्रस्तावना

भाषा विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं, भाषा के विभिन्न अंगों का विवेचन और निरुपण किया जाता है। मानव किस प्रकार बोलता है, उसकी बोली का किस प्रकार विकास होता है। उसकी बोली और भाषा में कब, किस प्रकार तथा कैसे-कैसे परिवर्तन होते हैं। किसी भाषा में किसी दूसरी भाषाओं के शब्द किन-किन नियमों के अधीन होकर मिलते हैं। किस प्रकार एक भाषा परिवर्तित या विकसित होकर संपूर्ण रूप से स्वतंत्र एक दूसरी भाषा का रूप धारण कर लेती है। आदि सभी विषयों या इनसे संबंध रखनेवाले उपविषयों का भाषाविज्ञान में समावेश होता है। भाषा विज्ञान की सहायता से हम किसी भी भाषा का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन एवं अनुशीलन करना सीखते हैं। सही अर्थों में भाषा विज्ञान भाषा और वाणी विषयक सहज कुतूहल को शांत करता है। भाषा विज्ञान भाषा के अध्ययन की वह शाखा है जिसमें भाषा का वैज्ञानिक

एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। हम इस इकाई के अंतर्गत भाषा विज्ञान का नामकरण, परिभाषा, स्वरूप, व्याप्ति आदि मुदों को विस्तार से स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। भाषा विज्ञान मानव समुदाय के द्वारा व्यवहार में प्रयुक्त किसी भी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता हैं। यह बात सभी को ज्ञात है कि भाषा-व्यवहार समाजिक व्यवहार का एक अभिन्न एवं अनिवार्य कारक है। भाषा-विज्ञान में मानव की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह बात कालबाधित सत्य है कि संसार का कोई भी प्राणी भाषा विहीन नहीं होता। इस प्रकार भाषा का महत्व सर्व सिद्ध है। भाषा विज्ञान में भाषा के विविध पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत होता है।

२.३ भाषा विज्ञान का नामकरण

भाषा विज्ञान शब्द पाश्चात्य विद्वानों की देन हैं। भाषा विज्ञान को अनेक विद्वानों ने अलग-अलग नामों से अभिहित किया है। भाषा विज्ञान को अनेक लोगों ने भाषा विज्ञान की अपेक्षा भाषिकी, भाषा लोचन, भाषाशास्त्र आदि नाम से अभिहित किया गया।

सही अर्थों में उक्त सभी नाम अँग्रेजी में प्रचलित 'लिंग्विस्टिक' शब्द के अनुवाद के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अँग्रेजी में 'लिंग्विस्टिक' (Linguastics) तथा 'फिलॉलोजी' (Philology) इन दो शब्दों का प्रयोग भाषा विज्ञान के लिए किया जाता है। व्यापक दृष्टि से कहीं-कहीं 'Science of language' भी कहा जाता है। सर विलियम जोन्स के संस्कृत, लैटिन, ग्रीक के तुलनात्मक अध्ययन में भाषाविज्ञान का आरंभ १७८६ ई. माना जाता है। पाश्चात्य देशों में भाषाविज्ञान को कई नाम दिये गये हैं। इसे सर्वप्रथम 'कम्परेटिव ग्रामर' (Comparative Grammar) नाम दिया गया। इसके उपरान्त इसे 'कम्पेरेटिव फिलॉलोजी' (Comparative Philology) कहा गया। डेवीज ने १८१७ में भाषाविज्ञान को 'ग्लासोलोजी' (Glosology) कहा हैं। प्रिचर्ड ने १८४१ इ. में उसे 'ग्लोटोलोजी' (Glottology) नाम दिया। लेकिन भाषाविज्ञान को प्रिचर्ड द्वारा दिया गया नामकरण अधिक दिनों तक चल नहीं सका। परंतु 'फिलॉलोजी' (Philology) शब्द ही इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। इस शब्द के मूल धातू ग्रीक भाषा के हैं। 'फिलॉलोजी' (Philology) शब्द में दो शब्द हैं - 'Phil + Logos', 'Phil' का अर्थ है 'word' या 'शब्द' तथा 'Logos' का अर्थ है - 'Science' या विज्ञान। इस प्रकार इसका अर्थ होता है - 'Science of word' शब्द भाषा का वाचक है। 'भाषाविज्ञान' के लिए 'सायन्स ऑफ लैंग्वेज' (Science of Language) नाम भी चलता है। भाषा विज्ञान के लिए आज 'लिग्विस्टिक्स' (Lingustics) नाम अधिक प्रचलित है।

भाषा, विकसनशील, विश्लेषण सापेक्ष यादृच्छिक तथा ध्वनिमूलक सार्थक व्यवस्था होने के कारण इसका विज्ञान स्थिर नहीं हो सकता। इस उपपत्ति के आधार पर ही कहा जा सकता है कि, "भाषाविज्ञान, भाषा-मातृ के अध्ययन से संबंधित एक गत्यात्मक विज्ञान है, जिसका विकास देशकाल के परिवेश में होता है।"

उक्त सभी बातों को ध्यान में लेकर ही भाषाविज्ञान के लिए अनेक नामों का प्रयोग होता आया है। लगभग १८ वीं शताब्दी के अंत तक व्याकरण और भाषाविज्ञान इन दोनों में अंतर

स्पष्ट नहीं हो पाया था। इसलिए अनेक विद्वान इसे "तुलनात्मक व्याकरण या कम्पैरेटिव ग्रामर कहते थे। फ्रान्स में इस विज्ञान का नाम 'लिंग्विस्टिक' (Linguistique) पडा। 'Lingustique' या 'Linguistic' केवल भाषाओं की जानकारी के अर्थ में प्रयुक्त किए जा सकते हैं, लेकिन भाषाविज्ञान का इतना सीमित अर्थ नहीं है, बल्कि बहुत ही विस्तृत है। उसमें तुलनात्मक अध्ययन की अपेक्षा अनिवार्य है। एफ.जी टक्कर ने अपनी किताब 'Introduction to Natural History' में भाषाविज्ञान की व्यापकता को देखकर इसका नाम 'Glattology' या 'Science of Tongue' रखा गया है। लेकिन आगे चलकर यह नाम इसके लिए सटीक और सर्वसमावेशक न लगने के कारण आखिर में 'फिलॉलोजी' (Philology) नाम ही स्वीकृत हुआ। 'भाषाविज्ञान' तथा 'फिलॉलोजी' दोनों शब्द संस्कृत वाङ्मय से प्रयुक्त होते आए हैं। इसका मतलब उक्त दोनों नाम उचित लगते हैं, जो दोनों ही शब्द संस्कृत से आए हुए हैं।"

वर्तमान समय में भाषाविज्ञान, तुलनात्मक भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, भाषाविचार, भाषालोचन तथा भाषिकी आदि नाम भी 'भाषाविज्ञान' के लिए प्राप्त होते हैं। परंतु उक्त सभी नामों में से 'भाषाविज्ञान' नाम सर्वाधिक प्रचलित शब्द है जो अँग्रेजी के 'लिंग्विस्टिक्स' का समानार्थी या पर्यायवाची बना हुआ है। भाषाविज्ञान शब्द सहज तथा सरल है, जिससे स्पष्ट होता है भाषा का विज्ञान, जो वैज्ञानिक अध्ययन का भाव प्रकट करता है।

इस प्रकार भाषाविज्ञान भाषासंबंधी जिज्ञासाओं की तृप्ति करा देने का प्रयास करता है। उसके भिन्न-भिन्न नामों में जो अर्थ छिपे हैं उसके बारे में कहा जा सकता है कि, जिस भाषा से मनुष्य का संबंध दिन-रात रहता है, उसका सांगोपांग परिचय भाषाविज्ञान देता है। भाषा क्या हैं? उसके अंग क्या हैं? ध्वनियाँ कैसे निसृत होती हैं? उसका उच्चारण, एक से दूसरी ध्वनि का भेद क्यों हो जाता है? एक भाषा की ध्वनियों में विभिन्न कालों में भेद क्यों हो जाते हैं? भाषा के स्थान भेद से अनेक रूप क्यों बनते हैं? संसार की भाषाओं के स्त्रोत एक हैं या अनेक? उक्त सभी प्रश्नों के जवाब भाषाविज्ञान ही दे सकता है।

भाषाविज्ञान किसी भी विषय का जो भाषा से संबंधित है उसका संपूर्ण ज्ञान जो ठीक क्रम से संकलित करके रख सकता है। वही ज्ञान संबंधित विषय के अध्ययन कर्ता के लिए उपयोगी साबित होता है। भाषाविज्ञान के नामकरण में भाषाविज्ञान के लिए प्रयुक्त विभिन्न नाम उस विषय की पुष्टि करते हैं कि जो अनुचित है ऐसा नहीं है। अलग-अलग विद्वान अपनी-अपनी विचारदृष्टि से विषय की सामग्री को देखकर विचार प्रस्तृत करते हैं।

उपर्युक्त संपूर्ण विवेचन के आधार पर भाषा संबंधी व्यवस्थित सूचनाओं का प्रयोग 'भाषाविज्ञान'में दिखाई देता है। भारतीय तथा पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिको ने इसे शब्दबद्ध किया है। उसे देखकर भाषाविज्ञान के स्वरूप में निखार आ सकता है।

२.४ भाषा विज्ञान की परिभाषा

भाषा विज्ञान एक समासयुक्त पद है। 'भाषाया: विज्ञानम् -भाषा विज्ञानम' अर्थात भाषा का विज्ञान, भाषा विज्ञान भाषा और विज्ञान दो शब्दों के संयोग से बना है। 'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भास्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है - 'व्यक्त वाक्' (व्यक्तायाम् वाचि) है।

'विज्ञान' शब्द 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'सा' धातु से 'अन' (ल्युट) प्रत्यय लगाने से बना है। जिसका अर्थ है विशिष्ट ज्ञान इस तरह से 'भाषा' के विशिष्ट ज्ञान को भाषा विज्ञान कहते हैं। भाषा के क्रमबद्ध तथा सुसंगठित अध्ययन को भाषाविज्ञान कहते हैं। इसमें मानव-मुखोच्चरित और लिखित भाषा-रूपों का अध्ययन किया जाता है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानो ने भाषा-विज्ञान की अनेक परिभाषाएँ दी है। उनमें से कुछ विद्वानों की भाषा विज्ञान संबंधी परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं -

१. भाषा विज्ञान संबंधी भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ -

१) डॉ. श्यामसुंदर दास :

"भाषाविज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरुपण किया जाता है।"

२) डॉ. बाबूराम सक्सेना :

"भाषाविज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन करना है।"

३) डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा :

"भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है, भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलायेगा।"

४) डॉ. भोलानाथ तिवारी :

"जिस विज्ञान के अंतर्गत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा (विशिष्ट नहीं अपितु सामान्य) की व्युत्पत्ति, गठन, प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिध्दान्तों का निर्धारण हो उसे 'भाषाविज्ञान' कहते हैं।"

५) भोलानाथ तिवारी :

"भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा अथवा भाषाओं का एककालिक, बहुकालिक, तुलनात्मक, व्यतिरेकी अथवा अनुप्रायोगिक अध्ययन, विश्लेषण तथा तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है।"

६) डॉ. मंगल देव शास्त्री :

"भाषाविज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रुप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गो की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।"

७) कपिलदेव द्विवेदी :

"भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन किया जाता है।"

८) डॉ. देवीशंकर द्विवेदी :

"भाषाविज्ञान को अर्थात भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं। भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।"

९) डॉ. रामेश्वर दयालु :

"भाषाविज्ञान भाषा संबंधी समस्त तथ्यों एवं व्यापारों से संबंध रखता है। उसमें संसार की भाषाओं के गहन, इतिहास, परिवर्तन, भाषाओं के पारस्परिक संबंध, उनके पार्थक्य, पार्थक्य के कारणों एवं नियमों आदि समस्त विषयों पर विचार होता है।"

१०) डॉ. अम्बादास सुमन :

"भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषाओं का सामान्य रूप से या किसी एक भाषा का विशिष्ट रूप से प्रकृति, संरचना, इतिहास, तुलना, प्रयोग आदि की दृष्टि से सिध्दान्त निश्चित करते हुए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।"

११) आचार्य किशोरीदास वाजपेयी :

"विभिन्न अर्थो में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।"

१२) मनमोहन गौतम :

"भाषाविज्ञान वह शास्त्र है, जिसमें ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भाषा की उत्पत्ति, बनावट, प्रकृति, विकास एव ऱ्हास आदि की वैज्ञानिक व्याख्या की जाती है।"

१३) डॉ. देवेन्द्र प्रसाद सिंह :

"भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सामग्री - संकलन वर्णनात्मक, विकासात्मक, तुलनात्मक, प्रायोगिक या इसमें से किसी भी विधि से विश्लेषण के द्वारा निरुपति सिध्दान्त के आधार पर अध्ययन होता है।"

२) पाश्चात्य विद्वानों की भाषा विज्ञान संबंधी परिभाषाएँ :

१) प्रो. एन.पी. गुने :

"भाषा के विज्ञान को कम्पेरेटिव फिलोलौजी अथवा फिलोलॉजी कहते हैं, साहित्यिक दृष्टि से इसका मुख्य अर्थ भाषा का अध्ययन है।"

"Comparative Philology or simply philology is the sciene of language Philology strictly means the study of a language from the literary point of view." An introduction to comparative philology.

२. आर. एच. राबिन्स :

"भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषाविज्ञान कहा जाता है।"

"General Linguistics may be defined as the science of Language." - General Linguistics

३. ग्लीसन :

"भाषाविज्ञान भाषा की आन्तरिक रचना के अध्ययन का शास्त्र है।"

४. इनसायक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटैनिका :

"फिलोलॉजी शब्द का अर्थ है भाषा का विज्ञान। अर्थात् भाषाओं की रचना और विकास का अध्ययन इस दृष्टि से फिलोलॉजी से वही अर्थ लेना चाहिए जो लिंग्विस्टिक्स शब्द से लिया जाता है।"

"The word Philology is here, taken as meaning of science of Language i.e. the study of the structure and development of language, thus, corresponding to Linguistics…"

Encylopaeclia of Britannica

ऊपर दी गई सभी परिभाषाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि, उनमें परस्पर कोई भी अंतर नहीं हैं। डॉ. श्यामसुंदर दास की परिभाषा में जहाँ केवल भाषाविज्ञान पर ही दृष्टि केंद्रित रही है, वहाँ मंगलदेव शास्त्री एवं भोलानाथ तिवारी ने अपनी परिभाषाओं में भाषा विज्ञान के अध्ययन के प्रकारों को भी समाविष्ट किया है। वास्तविक रूप से परिभाषा वह अच्छी होती है जो संक्षिप्त हो और स्पष्ट हो। इस प्रकार इस भाषा-विज्ञान की एक नवीन परिभाषा दे सकते हैं - "जिस अध्ययन के द्वारा मानवीय भाषाओं का सूक्ष और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाए, उसे भाषाविज्ञान कहा जाता है।" इसी बात को दूसरे शब्दों में कहे तो - "भाषाविज्ञान वह है, जिसमें मानवीय भाषाओं का सूक्ष्म और व्यापक वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।"

२.५ भाषाविज्ञान का स्वरूप

भाषाविज्ञान शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है। 'भाषा' और 'विज्ञान' भाषा का अर्थ है, बोलना और विज्ञान का अर्थ है, वस्तुनिष्ठ विश्लेषण। भाषा विज्ञान अन्य शास्त्रों की अपेक्षा एक नवीन शास्त्र है। इस विज्ञान के अंतर्गत भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भाषा से संबंधित सभी अंगों का विस्तार से व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। भाषा से संबंधित विभिन्न प्रश्नों का वैज्ञानिक पद्धति से व्यवस्थित अध्ययन करने के कारण इसे विज्ञान कहा जाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण उसे अपने विचार समाज के अन्य व्यक्तियों के सामने प्रकट करने पड़ते हैं। मनुष्य अपने भावों तथा विचारों को जिस माध्यम के द्वारा अभिव्यक्त करता है, उसे भाषा कहते हैं। इसी बात को दूसरे शब्दों में कहना हो तो - मानव अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जिस सार्थक साधन को अपनाता है, उसे भाषा कहते हैं। मनुष्य के विचारों की अभिव्यक्ति भाषा से ही संभव होती है। यह अभिव्यक्ति अनेक प्रकारों से हो सकती है। उदा. सिर हिलाकर, हाथ हिलाकर, हाथ दबाकर, चुटकी बजाकर, हल्दी-सुपारी बाँटकर, निमंत्रण-पत्र के द्वारा, झंडियाँ दिखाकर, ऊँगली दिखाकर, लंबी सांस लेकर, आँख दबाकर आदि।

भाषा केवल भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम नहीं बल्कि चिंतन, मनन, विचार का भी साधन है। भाषा वह माध्यम है, जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से संबंध

स्थापित कराती है। अगर मानव के पास भी भाषा जैसा अस्त्र न होता तो वह भी अन्य पशु-पक्षियों के समान अपने भावों, विचारों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ होता। विश्व के प्रत्येक देश में कोई-न-कोई भाषा बोली जाती है। भाषा मानव शरीर में एक ऐसा दैवी अंश है, जो इस के अन्य प्राणियों में केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। भाषा ने ही समस्त संसार में अपना प्रकाश फैलाया हुआ है। वह एक ज्योति है। इस भाषा नामक ज्योति के अभाव में सारा संसार घोर अंधकार में होता। भाषा रूपी दैवी अंश के कारण ही मनुष्य इस संसार में उत्तम जीव माना जाता है। आज मानव ने भाषा की वजह से ही ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व स्थापित किया है। मानव केवल और केवल भाषा के कारण ही चर और अचर जगत का स्वामी बनकर बैठा है। सर्व प्रथम वैदिक ऋषियों ने ऋग्वेद में वाग सूक्त के आठ मंत्रों में इस विषय की और ध्यान आकृष्ट किया कि, वाक्तत्व या भाषा ही वह दिव्य-ज्योति है जो मनुष्य को ऋषि, देवता या विद्वान बनाती है।

भाषा शब्द संस्कृत भाषा के 'भाष्' धातु से बना है। इसका अर्थ है बोलना मतलब भाषा वह है जिससे बोला जाए। व्यावहारिक दृष्टि से भाषा बहुत ही उपयोगी है। भाषा की उपयोगिता को देखकर भाषा-विषयक अनेक जिज्ञासाएँ मनुष्य के मन में व्युत्पन्न होती हैं। उदा. भाषा क्या है, भाषा की व्युत्पत्ति किस प्रकार हुई? भाषा कैसे बनती है? भाषा का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है? भाषा के अवयव कौनसे है? उन अवयवों की उच्चारण विधी क्या है? विश्व की भाषाओं का परस्पर संबंध क्या है? उक्त सभी जिज्ञासाओं का समाधान करने के लिए अनेक शताब्दियों से प्रयास हो रहा है। इसी वजह से आज भाषा विज्ञान एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हो सका है। लगभग २५० वर्षो से पाश्चात्य देशों में भी इस विषय पर अनेक गंभीर चिंतन और मनन होता आ रहा है।

सर विलियम जोन्स ने १७८६ में संस्कृत भाषा का संपूर्ण अध्ययन किया। इस अध्ययन से उन्होंने पाया कि संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं में बहुत सारी संभावनाएँ निहित हैं। इसी कारण उन्होंने तुलनात्मक अध्ययन पर अधिक बल दिया। इस प्रकार संस्कृत भाषा तुलनात्मक भाषा की मूल बनी। विलियम जोन्स द्वारा डाली गई नींव आज विकसित होकर तथा पल्लवित होकर भाषाविज्ञान के रूप में प्रसिद्ध है।

भाषाविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो भाषा संबंधी सभी प्रश्नों तथा समस्याओं का समाधान तलाशता है। भाषाविज्ञान का संबंध केवल हिन्दी भाषा से न होकर विश्व की समस्त भाषाओं से है। भाषाविज्ञान ही एक ऐसा विज्ञान है जो विश्व की सभी भाषाओं का सामूहिक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। भाषाविज्ञान ही व्याकरण, रुप, पद-निर्माण, वाक्य प्रयोग की शिक्षा देता है। भाषाविज्ञान व्याकरण का व्याकरण होने के कारण ध्वनि परिवर्तन आदि सभी दिशाओं में काम करता है। भाषा विज्ञान भाषा के उच्चारण, प्रयोग तथा उपयोग की सुव्यवस्थित शिक्षा प्रदान करता है। भाषाविज्ञान भाषा के सभी अंगो के विवेचन के साथ-साथ उसे जीवन उपयोगी भी बनाता है। भाषाविज्ञान विश्व भाषा शिक्षण में अत्यंत ही मददगार है।

२.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने भाषा विज्ञान का नामकरण, उसकी परिभाषा और भाषा विज्ञान का स्वरूप और व्याप्ति आदि का अध्ययन किया। भाषा कि उपयोगिता को देखकर भाषा विषयक अनेक जिज्ञासाएँ विद्यार्थियों के मन में व्युत्पन्न हुए, उसे इस इकाई के माध्यम से समझ सके।

२.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) 'भाषा विज्ञान' शब्द किस विद्वानों की देन है ?
२) "भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन किया जाता है" यह परिभाषा किसकी है ?
३) सर विलियम जोन्स ने कौनसी भाषा का सम्पूर्ण अध्ययन किया ?
४) भाषा विज्ञान को 'ग्लासोलोजी' यह नाम किसने दिया ?

२.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भाषा विज्ञान कि परिभाषा स्पष्ट करते हुए भाषा विज्ञान के नामकरण की चर्चा कीजिए।
२) भाषा विज्ञान के स्वरूप और व्याप्ति पर प्रकाश डालिए।

२.९ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
२) भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी
३) हिंदी भाषा का उद्‌भव और विकास - डॉ. उदयनारायण तिवारी

❖❖❖❖

इकाई-३

भाषा विज्ञान का अध्ययन एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा :

३.१ इकाई का उद्देश्य
३.२ प्रस्तावना
३.३ भाषा विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र
३.४ भाषा विज्ञान - अध्ययन की दिशाएँ
३.५ भाषा विज्ञान के प्रकार
३.५.१ अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान
३.५.२ व्यतिरेकी भाषा विज्ञान
३.६ सारांश
३.७ लघुत्तरीय प्रश्न
३.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न
३.९ संदर्भ ग्रंथ

३.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से पाठकों का परिचय होगा।

i) भाषा विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र से परिचय होगा।
ii) भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाओं पर विवेचनात्मक जानकारी प्रस्तुत करना।
iii) भाषा विज्ञान के प्रकारों से अवगत करना।

३.२ प्रस्तावना

अन्य विज्ञानों की तुलना में भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। (Gune) गुणे का कथन है कि भाषा-विज्ञान का क्षेत्र उतना ही व्यापक है, जितनी की सारी मानवता। इसका कारण यह है कि स्वयं मानव का सम्बन्ध भाषा के साथ है। भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध मानव मात्र की भाषा से है। विश्व की समस्त भाषाएं भाषा विज्ञान के क्षेत्र में आती हैं। (Gray) ग्रे का विचार है कि भाषा-विज्ञान भाषा की वैज्ञानिक खोज और इतिहास से सम्बन्ध रखना है। वह किसी ऐसे तथ्य का अध्ययन है जो समस्त मानवता में व्याप्त हो या किसी दिए हुए भाषा-परिवार के मध्य अक्षरो एंव सभांवताओं का परिक्षण हो या किसी पृथक भाषा की खोज हो और चाहे एक या अधिक बोलियों का अध्ययन।

३.३ भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र

भाषा-विज्ञान में समस्त भाषाओं का विवेचनात्मक अध्ययन, विश्लेषण, उनकी उत्पति और विकास तथा उनकी परस्पर तुलना आदि भाषाविज्ञान के अंतर्गत आते हैं। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में केवल साहित्यिक भाषाओं का ही अध्ययन नहीं होता। अपितु असभ्य, अर्धसभ्य एवं ग्रामीण लोगों की बोलियों का भी विशेष सावधानी के साथ अध्ययन किया जाता है। यहाँ यह समझ लेना उचित है कि भाषाशास्त्री के जिस साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलचाल और ग्रामीण बोलियाँ अधिक महत्व की होती है। इसका कारण यह है कि उसमे भाषा की प्रवृत्ति के मौलिक तत्वों का ठीक निष्कर्ष निकालना संभव होता है। भाषा विज्ञान वर्तमान और अतीत दोनों प्रकार की भाषा का अध्ययन करता है। वह त्रैकालिक तथ्यों का अनूसंधान करता है और उनका प्रकाशन करता है। मानव की प्रकृति का जितना सुक्ष्म अध्ययन भाषाविज्ञान प्रस्तुत करता है, उतना अन्य विज्ञान नहीं। भाषा विज्ञान एक और व्याकरण का काम करता है तो दूसरी और उसके दार्शनिक पक्ष को स्पष्ट करता है। इस दार्शनिक पक्ष की व्याख्या में उसे अन्य-अनेक विज्ञानों का सहयोग लेना पडता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान का क्षेत्र केवल व्याकरण और दर्शन तक ही सीमित न रहकर विज्ञान और शास्त्रों में अनेक अंशों तक व्याप्त है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में उसके सभी अंग सम्मिलित है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

३.३.१ मुख्य वर्ग
३.३.२ गौण वर्ग

३.३.१ मुख्य वर्ग :

भाषा विज्ञान भाषा का सर्वांगिण अध्ययन प्रस्तुत करता है, अतः उसमें भाषा के सभी घटकों का अध्ययन होता है। भाषा शब्द के द्वारा उसके मुख्य चार घटकों का बोध होता है।

१) ध्वनि (sound) ध्वनि-विज्ञान (phonetics)
२) पद या शब्द (form) पद - विज्ञान, रूप विज्ञान (Morphology)
३) वाक्य (sentence) वाक्य विज्ञान (syntax)
४) अर्थ (meaning) अर्थ विज्ञान (semantics)

भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि है। ध्वनि का ही सर्वप्रथम उच्चारण होता है। अनेक ध्वनियों से मिलकर पद या शब्द बनता है। अनेक पदों से वाक्य की रचना होती है। और वाक्यों से सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। यह क्रम निरंतर चलता रहता है। इनमें से प्रत्येक अंग का विशेष अध्ययन किया जाता है।

१) ध्वनि विज्ञान -

शब्द का मुख्य आधार ध्वनि है। ध्वनि-विज्ञान में भाषा के मूल तत्व ध्वनि का व्यापक अध्ययन किया जाता है। इसमें मुख्य रुप से इन विषयों का संकलन होता है - ध्वनि क्या है? ध्वनियाँ कितनी है? इनका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है? ध्वनियाँ कैसे और कहाँ से व्युत्पन्न होती हैं? ध्वनियों का संप्रेषण किस प्रकार का होता है? ध्वनि भेद के क्या कारण है?

ध्वनि संयोग से क्या परिवर्तन होते हैं ? ध्वनियों में तीव्रता और मंदता क्यों आती है ? ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत किसी भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का वर्णन और विवेचन आता है। ध्वनि-परिवर्तन के कारणों के साथ-साथ परिवर्तन की दिशाएँ भी विचित्र तथा अद्‌भूत है, जिनमें कहीं ध्वनियों का आगम होता है तो कही लोप। ध्वनि-नियमों का आकलन ध्वनि-विज्ञान का ही विषय है। ध्वनि-नियम प्राकृतिक नियमों की भाँति अचल एवं स्थिर नहीं होते। इनका प्रचलन भाषिकी और क्षेत्रीयता की दृष्टि से अधिक प्रसिद्ध है। इन ध्वनि नियमों में कुछ नियम विख्यात हैं - ग्रिम नियम, ग्रास नियम, बर्नर का नियम आदि। इस प्रकार भाषा के संदर्भ में ध्वनि का सम्पूर्ण विवेचन इसके अंतर्गत किया जाता है।

२) पद या रूप विज्ञान -

अनेक ध्वनियों के संयोग से शब्द का निर्माण होता है। जब कोई शब्द वाक्य में प्रस्तुत होने की क्षमता धारण कर लेता है तब वह पद बन जाता है। पद-विज्ञान को रूप-विज्ञान, रूप विचार तथा पद-विचार भी कहा जा सकता है। रूप-विज्ञान के अंतर्गत शब्द और पद का निर्माण कैसे होता है। पद के घटक अवयव क्या है ? शब्द और पद में क्या भेद है ? उपसर्ग, प्रकृति एवं प्रत्यय का योग कैसा और कितना है ? पदों का विभाजन किस आधार पर होता है ? पद-निर्माण कितने प्रकार का होता है ? पद परिवर्तन क्यों होता है ? इसका मुख्य कारण क्या है ? परिवर्तन की दिशाएँ कौन-कौन सी है ? इत्यादि विषयों का पद-विज्ञान में विवेचन किया जाता है।

३) वाक्य विज्ञान -

जिस प्रकार विभिन्न ध्वनियों के समन्वय से पद या रूप बनता है। उसी प्रकार विभिन्न पदों या रूपों के समन्वय से वाक्य बनता है। भाषा का मुख्य काम विचार-विनिमय है। विचार-विनिमय वाक्यों के द्‌वारा ही संभव है। अतः वाक्य ही भाषा का सबसे अधिक स्वाभाविक और महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। वाक्य विज्ञान में वाक्य की रचना किस प्रकार होती है ? वाक्य में पदों का अन्वय किस प्रकार होता है ? अन्वय का आधार क्या है ? कर्ता, कर्म, क्रिया आदि का किस स्थान पर, निवेश होता है ? वाक्य के कितने भेद हैं। इत्यादि बातों का विवेचन किया जाता है। वाक्य विज्ञान को तीन भागों में विभाजित किया जाता है।

१) वर्णनात्मक वाक्य - विज्ञान
२) ऐतिहासिक वाक्य - विज्ञान
३) तुलनात्मक वाक्य - विज्ञान

वर्णनात्मक वाक्य-विज्ञान में वाक्य की रचना का सामान्य विवरण प्रस्तुत किया जाता है। ऐतिहासिक वाक्य विज्ञान में वाक्य की रचना का इतिहास दिया जाता है और तुलनात्मक, वाक्य - विज्ञान में दो या अनेक भाषाओं के वाक्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

४) अर्थ विज्ञान -

जिस प्रकार मानव शरीर का सार आत्मा है, उसी प्रकार भाषारूपी शरीर की आत्मा अर्थ है। ऐतिहासिक धरातल पर अर्थ - विज्ञान के विवेच्य को भी समझा जा सकता है। अर्थ-विज्ञान में बौद्धिक नियमों का अनुशीलन किया जाता है, जिसमें अर्थ, विकास, अर्थ भेद तथा अर्थ परिवर्तन की दिशाओं का पता चलता है। अर्थ - विज्ञान के अंतर्गत अर्थ क्या है ? शब्द

और अर्थ का सम्बन्ध क्या है ? अर्थ परिवर्तन की कौन-कौन से कारण है इत्यादि समस्याओं का समाधान किया जाता है। अर्थ का अध्ययन भी वर्णनात्मक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक तीनों रूपों में हो सकता है। इसमे पर्यायवाची शब्द, नानार्थक शब्द, विलोमार्थक शब्द आदि का भी विवेचन किया जाता है।

३.३.२ गौण वर्ग -

उपरोक्त भाषाविज्ञान के प्रमुख चार अंगों के अतिरिक्त कतिपय अन्य अंगों का भी विवेचन किया जाता है। इन्हें गौण अंग माना जाता है। वे इस प्रकार है :

भाषा की उत्पति -

इसमें भाषा की उत्पति कैसे हुई। इस विषय पर भाषा - शास्त्रियों का क्या मत है ? भाषा का विकास कैसे हुआ ? आदि पर विचार किया जाता है।

भाषाओं का वर्गीकरण -

इसके अंतर्गत भाषाओं का तुलनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन कर उनका वर्गीकरण किया जाता है। इस आधार पर यह भी निश्चित किया जाता है कि कौन-कौन सी भाषाएँ एक परिवार की है।

कोश-विज्ञान -

कुछ विद्वान इसे व्युत्पतिशास्त्र भी कहते हैं। व्युत्पतिशास्त्र के लिए संस्कृत का 'निरुक्त' शब्द प्रचलित है। कोश-विज्ञान में भाषा के समस्त अर्थवान तत्वों को वर्णानुक्रम से सुचीबद्ध किया जाता है। इसके अंतर्गत शब्दों की व्युत्पति क्या है। शब्दों का अर्थ कैसे निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक शब्द का किन अर्थो में प्रयोग होता है। एकार्थक, अनेकार्थक, विषमार्थक शब्दों की व्याख्या आदि का विवेचन होता है। शब्द के पूरे जीवन तथा उसके आंतरिक और बाह्य परिवर्तनों पर विचार किया जाता है।

लिपि - विज्ञान -

इसमें लिपि की व्युत्पति विकास और उसकी उपयोगिता आदि पर विचार किया जाता है। लिपि के आधार पर ही किसी भाषा का अध्ययन किया जाता है। अतः इसे भी भाषा विज्ञान का अंग माना जाता है।

भाषिक भूगोल -

इसके अंतर्गन्त भाषा का भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। विश्व के किन-किन भागों में कौनसी भाषाएँ बोली जाती है ? किस भाषा का कितना व्यापक क्षेत्र है ? उसकी कितनी बोलियाँ हैं ? उनकी निश्चित सीमाएँ क्या हैं ? सीमान्तों की भाषाएँ कैसे परस्पर प्रभावित होती है। इस पद्धति पर अनेक निष्कर्ष भी प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

प्रागैतिहासिक खोज -

इसमें भाषा-विज्ञान के आधार पर प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। भाषा - विज्ञान ही एक मात्र ऐसा साधन है, जिसके द्वारा प्राचीन संस्कृतियों का यथार्थ ज्ञान हो सकता है। यह शाखा अभी तक शैशवावस्था में है।

शैली - विज्ञान -

भाषा विज्ञान की यह नवीन पर महत्वपूर्ण शाखा हैं। इसमें किसी भाषा के लेखक या कवि भाषा के किन शब्दों को मुख्य रूप से अपनाते हैं, उनकी शैली की क्या विशेषताएँ हैं? आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। व्यक्तिगत अंतर एवं शैली सम्बन्धी अंतर का अध्ययन शैली विज्ञान का विषय है।

भू-भाषा-विज्ञान -

इसके अंतर्गत विश्व की भाषाओं का विभाजन तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव का संग्रह किया जाता है। साथ ही विभिन्न देशों की सांस्कृतिक किस प्रकार भाषा को प्रभावित करती हैं, इसका वर्णन किया जाता है।

समाज - भाषा विज्ञान -

इसमें भाषा और समाज का सम्बन्ध तथा समाज के विभिन्न स्तरों पर प्रयुक्त भाषा की ध्वनि, रूप, वाक्य और अर्थ आदि की विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

३.४ भाषा-विज्ञान-अध्ययन की दिशाएँ

भाषाविज्ञान की अध्ययन पद्धतियों के संदर्भ में भाषाविज्ञान शब्द से जो प्रत्यय मस्तिष्क से उत्पन्न होता है, पहले उसका अध्ययन कर लेना आवश्यक हो जाता है। वैसे भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है जो भाषा का विज्ञान है वह भाषा विज्ञान है। परंतु इस अर्थ से यह ज्ञात नहीं होता हैं कि भाषा का अध्ययन विश्लेषण भाषाविज्ञान द्वारा किन-किन रूपों में किया जाता है। जैसे काव्यशास्त्र शब्द से इतना ही ज्ञात होता है कि इसमें काव्य का अध्ययन विश्लेषण होता है। यह शब्द रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि संप्रदायों का बोध नहीं कराता। जिस प्रकार इन सभी सिद्धांतों का सामुहिक नाम काव्यशास्त्र है उसी प्रकार भाषाविज्ञान शब्द भी भाषा का अध्ययन करने की कुछ विशिष्ट पद्धतियों का सामूहिक नाम है। भाषा वैज्ञानिकों द्वारा भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण की कई पद्धतियाँ अपनाई गई हैं। इनके आधार पर भाषाविज्ञान में पाँच अध्ययन पद्धतियाँ प्रख्यात है।

अ) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति
आ) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पद्धति
इ) तुलनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति
ई) संरचनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति
उ) प्रायोगिक भाषाविज्ञान पद्धति

अ) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति :

इसके अंतर्गत किसी एक भाषा का किसी काल विशेष से सम्बद्ध स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। इस भाषा के उस काल के स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भाषा के उस काल के स्वरूप का विवेचन और विश्लेषण किया जाता है। यह भाषा वर्तमान काल की हो सकती है। यदि उस भाषा का प्राचीन साहित्य उपलब्ध है तो वह भूतकाल की हो सकती है। जैसे-संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अँग्रेजी आदि भाषाओं का प्राचीन साहित्य उपलब्ध है। इन भाषाओं का वर्णनात्मक

विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। भाषा के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, प्रत्यय, विभक्ति आदि रूपों का वर्णनात्मक सम्यक अनुशीलन इस पद्धति की विशेषता हैं। आजकल भाषाविज्ञान के ध्वनि, वाक्य, अर्थ तथा रूप को इस प्रवृत्ति के द्वारा रुपायित करने में सुबोधता प्राप्त होती है। इस प्रवृत्ति के लिए वस्तुपरक दृष्टिकोण का होना अनिवार्य है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का सम्बन्ध उसके विद्यमान स्वरुप से है। इसमें भाषा का विकास या तुलनात्मक अध्ययन विचार का विषय नहीं है। अतः इसे स्थित रूपात्मक कहा जाता है। जैसे संस्कृत व्याकरण या पाणिनीय व्याकरण का स्थित रूपात्मक कहा जाएगा। पाणिनी ने संस्कृत भाषा का जो विश्लेषणात्मक स्वरूप उपस्थित किया है, उसकी पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। पाश्चात्य विद्वानों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का इससे अधिक सुंदर उदाहरण नहीं मिल सकता। पाश्चात्य जगत में इस प्रवृति का स्वरुप प्रभाव सृष्टि के कारण अधिक व्याप्त है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान सामान्य भाषाविज्ञान का प्रमुख अंग माना जाता है। इसको आधार मानकर ही ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान आगे बढते हैं। आज यह भाषाविज्ञान के एक स्वतंत्र अंग के रूप में विकसित हो रहा है। इस पद्धति को मानने वाले भाषा के केवल उच्चरित रूप का ही अध्ययन आवश्यक समझते हैं। वे ध्वनि, पद और वाक्य तक ही इसकी सीमा निर्धारित करना चाहते है। इनके मतानुसार वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में अर्थविज्ञान का स्थान नहीं है। यह विचार अत्यंत आपत्तिजनक और उपेक्षणीय है। ध्वनि, पद और वाक्य भाषा के शरीर है और अर्थ आत्मा। अर्थरूपी आत्मा के बिना शरीर किस काम का। अर्थ की उपेक्षा करने पर वर्णनात्मक भाषाविज्ञान निर्जीव शरीर के चीरफाड के समान चिरसार हो जाएगा। वर्णनात्मक विवेचन भाषा विज्ञान के सभी अंगों के विवेचन के लिए रूपात्मक है। उसमें प्राचीन साहित्य से लेकर अद्यतक युग तक के साहित्य को विश्लेषणात्मक स्वरूप प्रदान किया जा सकता है।

आ)ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पद्धति -

इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य भाषा विशेष का काल सापेक्ष क्रमागत परंपरा में इतिवृत्तात्मक अनुशीलन करना है। इसमें भाषा के क्रमिक विकास का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है। भाषा परिवर्तनशील है। वह सदैव एक सी नहीं रहती। भाषा परिवर्तन को ही भाषायी विकास कहा जाता है। भाषा का आदि रूप क्या था? इसमें कम-से-कम दो कालो का क्रमिक विकास दिखाना आवश्यक है। उदाहरणार्थ वैदिक संस्कृत से लेकर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के रूप में परिवर्तित होते हुए वर्तमान हिंदी आदि भाषाओं का क्रमिक विकास ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का विषय होगा। ध्वनि, पद और वाक्यों में क्रमशः किस प्रकार का विकार आया। किस युग में उसका क्या स्वरूप था और उसका वर्तमान विकसित रूप क्या हुआ? इनकी जानकारी ऐतिहासिक भाषाविज्ञान देता है। ऐतिहासिक अनुसांनपरक यह पद्धति गत्यात्मक प्रणाली के नाम से भी जानी जा सकती है।

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का उद्भव यूरोप में हुआ। आश्चर्य की बात यह है कि युरोपवासी भाषाविज्ञानी संस्कृत के ज्ञान से इस दिशा की और अग्रसर हुए। ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के विशिष्ट संदर्भ में वे इस कार्य में प्रवृत्त हुए और उन्होंने देखा कि युरोप और अन्य अनेक भाषाओं का संस्कृत से सीधा सम्बन्ध है। एकीसवी शताब्दी का काल ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का स्वर्णयुग है। यह वह युग था जिसमें भाषाविज्ञान के अध्ययन के लिए संस्कृत का

ज्ञान अनिवार्य माना जाता था। भाषाविज्ञान में समकालिक और कालक्रमिक इन दो पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग प्रचलित है। समकालिक भाषाविज्ञान में उस काल विशेष में प्रचलित भाषा के रूपों का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान कालक्रमिक है। इसमें कालों के रूपो का अध्ययन किया जाता है।

इ) तुलनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति -

इस पद्धति के अंतर्गत दो या दो से अधिक भाषाओं का सर्वांगपूर्ण गूढ़ तरीके से काल सापेक्ष तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। यह काल किसी एक काल विशेष या अनेक कालों के आधार पर की जाती हैं। समकालिक और ऐतिहासिक भाषा सामग्री के आधार पर इसे प्रस्तुत किया जा सकता है। इस अध्ययन के आधार पर ही भाषाओं के बीच पारिवारिक सम्बन्ध दिखाया जाता हैं। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान तुलनात्मक भाषाविज्ञान की तुलना के बिना पंगु है। वास्तव में आधुनिक भाषाविज्ञान का जन्म ही तुलनात्मक भाषावैज्ञानिक अध्ययन से हुआ है। यह इसके प्रभाव का ही परिणाम है कि अब से कुछ ही पूर्व तक भाषाविज्ञान को तुलनात्मक भाषाविज्ञान कहा जाता था।

तुलनात्मक पद्धति भाषाविज्ञान की एक अभिनव प्रक्रिया है। संस्कृत लैटिन और ग्रीक आदि पुरानी भाषाओं की तुलना का श्रेय भी आधुनिक भाषाविज्ञान को जाता है। १८ वी शताब्दी में जर्मनी के प्रसिद्ध 'ग्रिम' ने ध्वनिपरक तुलनात्मक संश्लेषण संस्कृत ग्रीक और लैटिन भाषाओं से जर्मनिक भाषाओं में देखो। फलतः ग्रिम नियम के नाम से आज ध्वनि नियम भाषा विज्ञान के लिए प्रख्यात बना हुआ है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान से विश्व-संस्कृति की उत्सव-धर्मिता का भी परिचय मिलता है। भाषा के प्राचीन और बदलते हुए कीर्तिमान तथ्य तुलनात्मक दृष्टि से समोहित किया जा सकते है। १९ वीं शताब्दी का काल तुलनात्मक भाषाविज्ञान का स्वर्णयुग है। इस युग में रास्क, ग्रिम, बाघ, श्लाइखर, डेलब्रुक था अंतोने मेई ने इस पद्धति के आधार पर अनेक मौलिक अविष्कार किए। वैसे तो तुलनात्मक पध्दति के संकेत कुर्दो और विलियम्स जोन्स ने अठारहवी शताब्दी में ही कर दिए थे। कुछ भी हो; युरोप में तुलनात्मक भाषाविज्ञान के आधार पर जो अध्ययन किया गया उसके मूल में संस्कृत भाषा थी। मैक्समूलर ने कहा भी है - "तुलनात्मक भाषाविज्ञान की एकमात्र दृढ़ आधारशिला संस्कृत है।" संस्कृत के ज्ञान के बिना तुलनात्मक भाषाविज्ञान वैसा ही है जैसा गणित के ज्ञान के अभाव में ज्योतिषी। तुलनात्मक पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके द्वारा भाषा परिवर्तन के काल का निश्चित निर्णय नहीं किया जा सकता। इसी कारण तुलनात्मक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान से सहायता माँगता है।

ई) प्रायोगिक भाषाविज्ञान पद्धति -

यह पद्धति धीरे-धीरे उभर रही है। इसे कुछ विद्वान व्यावहारिक भाषाविज्ञान भी कहते हैं। भाषाविज्ञान की सैद्धान्तिक उपलब्धियों का विवेचन उपयुक्त चार पद्धतियों में किया जा सकता है। वस्तुतः भाषा का प्रयोग पक्ष सिद्धान्त पक्ष से अधिक सबल है। इस पक्ष को समझने के लिए भाषा-विज्ञान की प्रयोगात्मक पद्धति की नींव डाली गई है। इस पद्धति में भाषा विद् किसी भाषा के क्षेत्र में जाकर उसके बोलने वालो से निकट सम्पर्क स्थापित करते हुए भाषा का व्यावहारिक अध्ययन करता है। प्रयोगात्मक पद्धति ने आज के विज्ञान युग में विस्तार आया है। जैसे-जैसे क्षेत्रीयता की परिधि की आवाज में गूँजने लगी है, वैसे-वैसे भाषाविज्ञान में प्रयोगप्रेरक उच्चस्तरीय परिमापन की माँग बढ़ गई है। सारे विश्व में विस्तीर्ण भाषायी आदान-प्रदान

प्रयोगात्मक पक्ष का एक उभरा हुआ रुप है। प्रयोगात्मक मशीनरी, टैकनीक से अधिक सम्बद्ध है। इसलिए टेलिप्रिन्टर, कायमोग्राफ तथा कम्प्युटर जैसे यांत्रिक साधनों का आविष्कार प्रयोगात्मक पद्धति को बल देता है।

आज समूचे भारत में हिंदी का राष्ट्रव्यापी रूप विशेष तौर पर बल पकड़ता जा रहा हैं। परिणाम स्वरूप हिंदी अनुवाद तथा पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण नाना रूपों में नाना विषयों के साथ अपेक्षित हो गया है। एक ओर जन-जीवन की भाषा का स्वरूप भाषा के सिद्धान्त पक्ष को अभिनव मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम हैं तो दूसरी और भाषा की विविध शैलियों को प्रयोगपरक बनाने में यह पद्धति सफल हुई है।

उ) संरचनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति

भाषा तत्वों की व्याख्या से संरचनात्मक प्रक्रिया भाषाविज्ञान में महत्वपूर्ण सारणि है। भाषात्मक तत्व संरचनात्मक पद्धति से विश्लेषित किए जाते है। भाषिक संरचना में ध्वनि रूप वाक्य का विशिष्ट स्थान है। ध्वनि तथा वाक्य भाषाविज्ञान का महत्वपूर्ण संरचनात्मक पक्ष है। इस पक्ष को रचनात्मक तत्वों की सापेक्षता में परखना या विवेचित करना इस पद्धति का लक्ष्य है। रचनांतर्गत भाषा के विभिन्न स्तरों तथा प्रभावों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। युग परिवेश के अनुसार भाषातत्व किन किन आधारों पर किन-किन रूपों में विकसित होते हैं आदि का क्रमिक किन्तु वर्णनात्मक अध्ययन संरचनात्मक पद्धति है। रचना के अंतर्भूत तत्वों को क्रममूलक तथा स्थितिमूलक आधारों पर नियोजित करना भी इस पद्धति का उद्देश्य है।

भाषाविज्ञान भाषा की वैज्ञानिक दृष्टि है। उस दृष्टि का सम्यक आकलन करना तथा रचना के सूक्ष्म अवयवों को अनुभव करना संरचनात्मक पद्धति का अंग है। भाषा संरचनात्मक पहलू है। इस पहलू का विस्तार सहज और सुबोध होता है। भाषा नैसर्गिक तरीके से विकसित होती है। विकास की उस दिशा का प्रतिपादन तथा अनुशीलन संरचानत्मक पद्धति का अभिष्ट बन जाता है। रूपविज्ञान के अंतर्गत शब्द विज्ञान और पदविज्ञान दोनों की अभिक्रियाओं का अध्ययन-मनन-भाषा विस्तार के लिए संरचनात्मक ही है। भाषा का सम्यक रूप से रचनात्मक पक्ष उभरकर प्रस्तुत कर देना ही संरचानत्मक पक्ष की अर्थकता है। भाषा जाने अनजाने अभिव्यंजन में नैसर्गिक गति प्रवाहमान है। इस प्रवाह की गति को भाषा का परिमार्जन कर लेना संरचनात्मक यौगिक क्रिया का ही प्रतिफलन है। भाषा रूप की भाँति अर्थ व्यंजना में विलक्षण है। अर्थविज्ञान के अपकर्ष, उत्कर्ष को अर्धादेश के साथ संकोच और विस्तार को तादात्मय कर लेना भी भाषाविज्ञान और विशेषकर संरचनात्मक पद्धति का महत्वपूर्ण पहलू है।

३.५ भाषा विज्ञान के प्रकार

३.५.१ अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान (Applied) :

आधुनिक भाषाविज्ञान में भाषा के अनुप्रायोगिक पक्ष पर भी चिंतन हुआ है। इस प्रकार अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान वह शाखा है - जिसका मुख्य लक्ष्य भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतो तथा प्रणाली के अनुप्रयोग से उन भाषायी समस्याओं का पता लगाना और उनका समाधान ढूँढ़ना है जिनका संबंध भाषा के इतर विषय क्षेत्रों के अनुभव से है। भाषाविज्ञान या उसके सिद्धांतों एवं प्रणालीयों का प्रयोग अन्य विषयों अर्थात मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, दर्शन आदि कार्य क्षेत्रों में किया जाने लगा है। ऐसे सभी प्रयोगों को सामान्यतः अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की संज्ञा दी गई है।

इस प्रकार भाषा का सैद्धांतिक विश्लेषण और वाक्य, रूपिय, स्वनिम आदि उसके व्याकरणिक स्तरों का वैज्ञानिक अध्ययन भाषाविज्ञान का सिद्धांत कहलाता है, जबकि सैद्धांतिक भाषाविज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों, तथ्यों और निष्कर्षो का किसी अन्य विषय में अनुप्रयोग करने की प्रक्रिया और क्रिया - कलाप का विज्ञान ही अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान है।

"अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञानी अपने ज्ञान भंडार के विवेचनात्मक परीक्षण के पश्चात उसका अनुप्रयोग उन क्षेत्रों में करता हैं, जहाँ मानव भाषा एक केन्द्रीय घटक होती है और उससे उन क्षेत्रों की कार्यक्षमता का संवर्धन किया जा सकता है।"

व्यवहार और प्रयोग की दृष्टि से इसके दो संदर्भ है।

१) व्यापक

२) सीमित

१) व्यापक :

व्यापक संदर्भ में इसके विषय क्षेत्र की सीमा के अंतर्गत शैली विज्ञान, कोशविज्ञान, भाषा नियोजन, वाक-चिकित्साविज्ञान आदि विषयों का अध्ययन होता है।

२) सीमित :

सीमित संदर्भ अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के विषय क्षेत्र का भाषाशिक्षण तक सीमित है।

भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतो के अनुप्रयोग को तीन संदर्भो में निर्धारित किया जा सकता है -

१) ज्ञान क्षेत्र का संदर्भ

२) विधा-विशेष का संदर्भ और

३) भाषा शिक्षण का संदर्भ

१) ज्ञान क्षेत्र का संदर्भ :

भाषा वैज्ञानिक सिद्धांत का अनुप्रयोग ज्ञान के किसी अन्य क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए स्वीकार किया जा सकता है। उदाहरण के लिए भाषा और समाज के बीच गहरा संबंध है। मनुष्य से बढ़कर समाज और भाषा दोनों एक दूसरे के अध्ययन के लिए संदर्भ बन जाते है। भाषा और समाज के संबंधों का अध्ययन जब भाषा की प्रकृति और उसके अपने प्रयोजनों को समझने के लिए किया जाता है तब वह समाज भाषाविज्ञान हो जाता है और जब हम भाषा और समाज के संबंधों को समाज की संरचना और प्रकृति को समझने के लिए अपनाते है तब वह भाषा का समाज शास्त्र बन जाता है।

२) विधा-विशेष का संदर्भ :

इसी प्रकार जब हम भाषाविज्ञान का सहारा लेकर संज्ञानात्मक बोध और मन की वृत्तियों का अध्ययन करते है, तो उस अध्ययन को भी अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान के क्षेत्र में रख सकते हैं। विधा विशेष के संदर्भ में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत शैलीविज्ञान, अनुवाद विज्ञान, कोशविज्ञान, भाषा नियोजन, वाक चिकित्साविज्ञान आदि आते हैं। भाषाविज्ञान का प्रयोग इन विभिन्न विषयों को समझने के लिए निश्चित सिद्धांत एवं प्रणाली प्रदान करता है। यह बात नहीं कि इन विषय क्षेत्रों के अध्ययन की अन्य दिशाएँ नहीं पर अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान इनके

लिए जो आधार देता है, वह न केवल अपनी प्रकृति में भाषावादी है अपितु अपने व्यवहार में वस्तुवादी और प्रणाली में वैज्ञानिक है।

३) भाषा शिक्षण का संदर्भ :

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का तीसरा संदर्भ भाषा शिक्षण है जो मातृभाषा शिक्षण की और अन्य भाषा शिक्षण अर्थात द्वितीय भाषा शिक्षण और विदेशी भाषा शिक्षण की भाषा वैज्ञानिक अंतदृष्टि उनमें हर स्तर पर प्रयुक्त होती है। शिक्षा सामग्री निर्माण, भाषा शिक्षण प्रणाली शैक्षणिक व्याकरण तकनीक आदि में भाषा वैज्ञानिक दृष्टि और अध्ययन प्रणाली का प्रयोग होता है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषिक भूमंडलीकरण का संबंध व्यावहारिक रूप से होता है। इससे पता चलता है कि भूमंडलीकरण के संदर्भ में भाषिक व्यवहार कैसे और क्यों होता है? भूमंडलीकरण भाषा की जो माँग होती है, उसी के अनुसार उसका अनुप्रयोग लक्ष्य निर्धारित के संदर्भ में होता है। वास्तव में यह देखा जाता है कि भूमंडलीकरण के युग में भाषा की उपयोगिता जैसे जैसे बढ़ती जाती है, उसी के अनुसार उसके विभिन्न प्रयोजन एवं संदर्भ भी जुड़ जाते है। यह कार्य अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है।

३.५.२ व्यतिरेकी भाषा विज्ञान (Contrastive) :

"इस पद्धति में दो भाषाओं के व्यतिरेक अर्थात असामनताओं का अध्ययन करते है। इस भाषा विज्ञान को व्यतिरेकी भाषा विज्ञान कहते हैं।"

व्यतिरेकी भाषा विज्ञान (Contrastive linguistics) भाषा-शिक्षण का व्यावहारिक तरीका है जो किसी भाषा-युग्म के समानताओं एवं अन्तरों का वर्णन करके भाषा को सुगम बनाने पर जोर देता है। इसीलिए इसे कभी अंतरात्मक भाषा विज्ञान भी कहा जाता है।

"व्यतिरेकी विश्लेषण अंग्रेजी के कॉन्ट्रास्टिव एनालिसिस शब्द का हिंदी पर्याय है।"

"दो भाषाओं की संरचनात्मक व्यवस्था के मध्य प्राप्त असमान बिंदुओं को उद्घाटित करने के लिए व्यतिरेकी विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। इसको एक व्यवस्थित शाखा के रूप में विकसित करने का श्रेय अमेरिकी भाषा विज्ञानियों चार्ल्स सी फ्रीज और राबर्ट लेडो को जाता है।"

परिभाषा :

"दो या दो से अधिक भाषाओं के सभी स्तरों पर तुलनात्मक अध्ययन द्वारा समानताओं और असमानताओं के निकालने को व्यतिरेकी विश्लेषण कहते है।"

- डॉ. भोलानाथ तिवारी

"भाषा विश्लेषण की यह तकनीक जिसके द्वारा भाषाओं में व्यतिरेक इंगित किया जाता है, व्यतिरेकी विश्लेषण कहलाती है।"

- डॉ. ललित मोहन बहुगुणा

उपयोगिता :

- अन्य भाषा शिक्षण के लिए पाठ्य सामग्री निर्माण करना।
- स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में निहित समानताओं और असमानताओं की तुलना करके पाठ्य बिंदुओं का चयन करना।
- शिक्षार्थी की शिक्षण समस्याओं को समझना।
- शिक्षण विधियों का अविष्कार करना।
- त्रुटियों का निदान करना।

उद्देश्य :

- दो भाषाओं के बीच असमान और अर्धसमान तत्वों का पता लगाना जिससे भाषा सीखने या अनुवाद करने में उन स्थलों पर खास ध्यान दिया जा सकता है जहाँ असमान संरचनाओं के कारण त्रुटि या मातृभाषा व्याघात की संभावना अधिक होती है।
- व्यतिरेकी विश्लेषण के परिणामों से अनुवादक स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के असंवेदनशील स्थलों का पहले से अनुमान कर सकता है जहाँ असमान संरचनाओं तथा नियमों के कारण अनुवादक मातृभाषा व्याघात या अन्य कारणों से गलती कर सकता है। इस प्रकार वह लक्ष्य भाषा की संरचना और शैली की स्वाभाविक प्रकृति को पहचान कर कृत्रिम और असहज अनुवाद से बच सकता है।
- व्यतिरेकी विश्लेषण के फलस्वरूप उसे एक से अधिक समानार्थी अभिव्यक्तियों की उपलब्धि होती है। जिससे वह संदर्भ के अनुसार उपयुक्त विकल्प का चयन कर सकता है और अनुवाद में मूल पाठ की सूक्ष्म अर्थ छटाओं को सुरक्षित रख सकता है।
- एम.जी. चतुर्वेदी के अनुसार मातृभाषा अथवा लक्ष्य भाषा व्याघात के विश्लेषण के लिए, दो भाषाओं की तथा उनकी संरचनाओं के सभी स्वरों पर तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए दोनों भाषाओं के समान, अर्धसमान तथा असमान प्रयोगों को पहचानने के लिए तथा पाठ्यक्रम निर्माण के लिए त्रुटि, त्रुटि विश्लेषण के लिए और लक्ष्य भाषा शिक्षण के लिए व्यतिरेकी विश्लेषण का प्रयोग होता है।

व्यतिरेकी भाषाविज्ञान की मूल स्थापनाएँ :

अन्य भाषा शिक्षण में भाषा सीखने वाले को स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में विहित व्यतिरेकों की तुलना।

- अन्य भाषा शिक्षण के लिए सबसे अधिक प्रभावी सामग्री वही है जो भाषा सीखने वाले की स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का व्यतिरेकी विश्लेषण समान रूप से वैज्ञानिक पद्धति से करने में सक्षम हो तथा सही पाठ्य बिंदुओं का चयन कर सके।
- जो शिक्षक शिक्षार्थी की स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा की वैज्ञानिक पद्धति से तुलना करने की क्षमता रखता है, वह शिक्षार्थी की शिक्षण समस्याओं को ढंग से समझ सकता है और समस्याओं का समाधान कर सकता है।

वस्तुतः विविध प्रमुख भाषाओं के संरचनाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाता है। यह विश्लेषण अनेक स्तरों पर कर सकते है जैसे - दोनों भाषाओं की ध्वनि व्यवस्था, व्याकरण, शब्दावली एवं लेखन व्यवस्थाओं की तुलना प्रस्तुत करना इस तुलना के मुख्य उद्देश्य दोनों

भाषाओं में विहित ऐसी समस्याओं और असमानताओं पर प्रकाश डालना, दोनो भाषाओं सीखने वाले में पैदा होने वाली मनोवैज्ञानिक उलझनो को दूर करना।

व्यतिरेकी भाषाविज्ञान अनुप्रयोग का क्षेत्र :

व्यतिरेकी विश्लेषण का प्रयोग मुख्यतः भाषा शिक्षण और अनुवाद में होता है

भाषा शिक्षण : डॉ. भोलानाथ तिवारी का कथन है कि "प्रायः यह समझा जाता है कि व्यतिरेकी विश्लेषण से अन्य भाषा शिक्षण में ही सहायता मिलती है, किंतु मातृभाषा शिक्षण में भी यह उपयोगी है क्योंकि कक्षा में भाषा का मानक स्वरूप ही सिखाया जाता है। इस संदर्भ में ध्यान देना चाहिए कि जिन उपभाषाओं / बोलियों के क्षेत्रों से विद्यार्थी आ रहे हैं और उनमें क्या समानताएँ / असमानताएँ हैं उसे भाषा के शुद्ध प्रयोगों से परिचित कराना है, स्वीकृत वाक्य रचना का प्रयोग करके सिखाना है। अतः व्यतिरेकी विश्लेषण अन्य भाषा शिक्षण में ही नहीं, मातृभाषा शिक्षण में भी उपयोगी सिद्ध होता है।"

अनुवाद :

व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद दोनों का ही संबंध दो भाषाओं से होता है - एक स्त्रोत भाषा और दुसरी लक्ष्य भाषा। अनुवाद से स्त्रोत भाषा पाठ को लक्ष्य भाषा में रुपातंरित किया जाता है जबकि व्यतिरेकी विश्लेषण में स्त्रोत भाषा की संरचना का लक्ष्य भाषा की संरचना के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसके बाद दोनों भाषाओं की व्यतिरेकों / भिन्नताओं को स्पष्ट किया जाता है। स्त्रोत भाषा के किसी कथन के लिए लक्ष्य भाषा में जब एकाधिक समानार्थक विकल्प सामने आते है, तब अनुवादक उपयुक्तता के आधार पर किसी एक विकल्प का चयन करता है।

राबर्ट लेडो द्वारा प्रतिपादित छह मानदंड :

विकल्प चयन की प्रक्रिया में व्यतिरेकी विश्लेषण का ही आश्रय लिया जाता है। अतः व्यतिरेकी विश्लेषण को अनुवाद का साधन माना जाता है। भाषाविद राबर्ड लेडो द्वारा प्रतिपादित छह मानदंड निम्नलिखित है।

१) रूप एवं अर्थ में समानता
२) रूपगत समानता और अर्थगत भिन्नता
३) रूपगत भिन्नता और अर्थगत समानता
४) भिन्न रूप एवं भिन्न अर्थ वाले शब्द
५) समान रूप और भिन्न रुप रचना एवं सह प्रयोग वाले शब्द

१) रूप एवं अर्थ में समानता -

इस वर्ग में उन शब्दों को रखा जाता है जो स्त्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा में ध्वनि अथवा लिपि तथा अर्थ के स्तर पर समान होते है। इस वर्ग में आने वाले शब्द समान अथवा भिन्न मूल के हो सकते हैं। जैसे - कोठी, शहर, दीवार, कमरा आदि

२) रूपगत समानता और अर्थगत भिन्नता -

दो भाषाओं में प्राप्त समतुल्य शब्दों के मध्य कभी-कभी सूक्ष्म अर्थ में समानता होती है तो कभी सूक्ष्म भिन्नता वृद्धिगत होती है। अनेक शब्दों में पूर्ण अर्थगत भिन्नता भी दिखाई देती

है। शोध के क्रम में कुछ ऐसे शब्द प्राप्त हुए हैं जिनमें रुपगत समानता किंतु अर्थगत भिन्नता व्याप्त है।

शब्द	**अर्थ**	
	हिंदी	**उर्दू**
सहन	बर्दाश्त करना	आँगन
सुदूर होना	अधिक दूर	जारी
बेल	एक प्रकार का फल	फावड़ा

३) रूपगत भिन्नता और अर्थगत समानता -

दो भाषाओं के मध्य पाए जाने वाले ऐसे शब्द जिनमें रूपगत भिन्नता एवं अर्थगत समानता होती है, इस वर्ग में रखे जाते हैं। एक ही भाषा के इस प्रकार के शब्दों को पर्यायवाची की संज्ञा दी जाती है।

हिंदी	**उर्दू**	**अंग्रेजी**
पेड़	दरख्त	Tree
जाँच	मुआयना	To Check

४) भिन्न रूप एवं भिन्न अर्थ वाले शब्द -

प्रत्येक भाषा-भाषी के खान-पान, वेशभूषा, विचार, रीति, मान्यता तथा धार्मिक सोच से जुड़े ये शब्द हर भाषा के अपने होते है। भिन्न रूप तथा भिन्न अर्थ वर्ग के शब्द सांस्कृतिक परिस्थिति से ही संबंध रखते हैं। इन शब्दों को लक्ष्य भाषा का बोलने वाला पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ होता है।

हिंदी	**उर्दू**	**अंग्रेजी**
पूजा	बुर्का	Alter
ब्रह्मचारी	काजी	Prayer
सन्यासी	ताबुत	Priest
आदि	आदि	etc.

५) समान रूप और भिन्न रुप रचना एवं सहप्रयोग वाले शब्द -

प्राय: भाषाओं में कतिपय ऐसे शब्द प्राप्त होते हैं जिनमें रूप एवं अर्थ के स्तर पर समानता होती है परंतु रूपरचना व सहप्रयोग के स्तर पर असमानता दृष्टिगत होती है।

दो भाषाओं में बहुचन के दो स्वर मिलते है।
सामान्य और विकारी

हिंदी - एकवचन - मंज़िल, मकान, कागज़
बहुवचन - साधारण मंजिलें, मकान, कागज़ों
विकारी - मंजिलों, मकानों, कागजों
अंग्रेजी - एकवचन - Destination, House, Paper
बहुवचन - Destinations, Houses, Papers

सहप्रयोग के उपवर्ग पुनरुक्ति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। किसी शाब्दिक इकाई का पुनः पूर्ण या आंशिक प्रयोग जो कि नए अर्थ का बोध कराएँ उन्हें पुनरुक्ति की संज्ञा दी जाती है।

१) पूर्ण पुनरुक्ति -

इस वर्ग में दो समान शब्दों का प्रयोग किया जाता है और पूरी रचना से एक नया अर्थ दिखाई देता है जैसे -

हिंदी	**उर्दू**
कभी - कभी	ब्राज़ औकात / गाहे - ब - गाहे
धीरे - धीरे	आहिस्ता - आहिस्ता
जल्दी से जल्दी	जल्द-अज़-जल्द

२) आंशिक पुनरुक्ति -

जब शब्द के किसी भाग को पुनः प्रयोग में लाया जाए तो यह प्रक्रिया आंशिक पुनरुक्ति कहलाती है। उदाहरणार्थ -

हिंदी	**उर्दू**
अपने - आप	खुद-ब-खुद
बातचीत	गुफ्तगू / बातचीत
आल्थी - पाल्थी	आलती पालती

समान कोशीय एवं भिन्न लक्ष्यार्थ वाले शब्द -

प्रायः भाषाओं में अनेक ऐसे शब्द पाए जाते है जो अपने मूल अर्थ से भिन्न या अधिक अर्थ का बोध कराते है। हिंदी-उर्दू में इस प्रकार के कई उदाहरण दृष्टिगत होते है जो अपने मूल अर्थ से भिन्न या अधिक अर्थ का बोध कराते है।

'मामू' शब्द नाते-रिश्ते की शब्दावली में माँ के भाई के लिए प्रयोग में आता है जब कि मुम्बई या हिंदी या बोलचाल की हिंदी में पुलिस वालों को 'मामू' कहा जाता है।

'हफ्ता' शब्द का अर्थ सप्ताह होता है किंतु अपराध जगत में 'असंवैधानिक' रूप से लिए गए कर को हफ्ता कहते है।

हिंदी धातु 'फेक' का बोलचाल की भाषा में भिन्न लक्ष्यार्थ में प्रयोग मिलता है, यथावह फेक रहा है। यहा 'फेक' का अर्थ गलत है।

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता कि समान कोशीय एवं भिन्न लक्ष्यार्थ वाले शब्दों के स्तर पर हिंदी - उर्दू में समानता एवं असमानता विद्यमान है। इस वर्ग में आने वाले शब्दों का अनुवाद कैसा एक जटिल कार्य है क्योंकि ऐसे शब्द अपने मूल अर्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ का बोध कराते है।

दो बोलियों के प्रयोगकर्ता जब परस्पर वार्तालाप करते समय एक दूसरे का आशय के साथ-साथ उन बोलियों का साधिकार प्रयोग करने में समर्थ होते है तो यह स्थिति 'पारस्परिक

बोधगम्यता' के नाम से जानी जाती है। दो बोलियों के मध्य यह स्थिति मिलती है, किंतु दो भाषाओं के बीच पारस्परिक बोधगम्यता नहीं होती है। वास्तव में 'पारस्परिक बोधगम्यता'का अभाव ही दो भाषाओं की स्वतंत्र अस्मिता का परिचायक कहा जाता है।

अतः यह कहा जा सकता है व्यतिरेकी विश्लेषण वह आधार है जिसके माध्यम से दो भाषाओं की संरचनाओं को इस तरह आमने सामने रखा जा सकता है कि उनमें विहित व्यतिरेक का शिक्षार्थी आसानी से समझ सके ताकि अन्य भाषा सीखते समय मातृभाषा के कारण उत्पन्न होने वाली त्रुटियों को दूर किया जा सके।

३.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने भाषा विज्ञान अध्ययन के क्षेत्र कौन-कौन से है। साथ ही भाषा विज्ञान की अध्ययन की दिशाएँ और उसके प्रकारों का अध्ययन किया है। भाषा विज्ञान में मस्तिष्क से उत्पन्न हुए शब्द का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। इस इकाई के माध्यम से भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन-विश्लेषण की अनेक पद्धतियों को अपनाया गया है। इसे पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है।

३.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) भाषा विज्ञान के अध्ययन में भाषा शब्द के द्वारा कितने घटकों का बोध होता है?

२) "भाषा विज्ञान का क्षेत्र उतना ही व्यापक है, जितनी की सारी मानवता। इसका कारण यह है कि स्वयं मानव का संबंध भाषा के साथ है।" यह कथन किस विद्वान का है?

३) 'रूप विज्ञान, रूप विचार और पद विचार' किसे कहाँ जाता है?

४) 'वाक्य विज्ञान' कितने भागों में विभाजित है?

३.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भाषा विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।

२) भाषा विज्ञान की अध्ययन पद्धतियों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

३) भाषा का अर्थ स्पष्ट करते हुए भाषा विज्ञान के प्रकार पर प्रकाश डालिए।

३.९ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२) भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३) हिंदी भाषा का उद्‌भव और विकास - डॉ. उदयनारायण तिवारी

४) भाषा विज्ञान के अधुनातम आयाम - डॉ. अंबादास देशमुख

❖❖❖❖

इकाई-४

स्वन विज्ञान

इकाई का स्वरूप :

४.१ इकाई का उद्देश्य
४.२ प्रस्तावना
४.३ स्वन विज्ञान की परिभाषा, स्वरूप
४.४ वाग अवयव और उनके कार्य
४.५ स्वनिम की विशेषताएँ
४.६ स्वनिम के भेद
४.६.१ खंड्य स्वनिम
४.६.२ खंड्येतर स्वनिम
४.७ सारांश
४.८ लघुत्तरीय प्रश्न
४.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न
४.१० संदर्भ ग्रंथ

४.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा ।

i) स्वन की परिभाषा और उसका स्वरूप स्पष्ट होगा ।
ii) वाग अवयव और उनके कार्य से परिचय होगा ।
iii) स्वनिम की विशेषताओं से अवगत हो पाएँगे ।
iv) स्वनिम के भेद से परिचय प्राप्त होगा ।

४.२ प्रस्तावना

स्वन या स्वनिम विज्ञान भाषा विज्ञान की एक शाखा है जिसके अध्ययन की इकाई 'स्वनिम' है । 'स्वनिम - रूपिम - शब्द (पद) - पदबंध - उपवाक्य - वाक्य - प्रोक्ति भाषा विज्ञान की विभिन्न इकाईयाँ है जो परस्पर सहसंबंधित होकर 'अर्थ' के संप्रेषण का कार्य करती है । अतः इस खंड में जहाँ एक ओर स्वनिम विज्ञान की केंद्रीय विषय - वस्तु 'स्वनिम' का विवेचन किया गया है वहीं दूसरी ओर भाषा की अन्य इकाईयों से 'स्वनिम' के संबंध को भी स्पष्ट करते हुए इससे तकनीकि अनुप्रयोगात्मक पक्ष को भी उद्घाटित किया गया है ।

४.३ स्वन विज्ञान की परिभाषा

भाषा की लघुत्तम इकाई 'स्वन' है । इसे ध्वनि का नाम भी दिया जाता है । किसी भाषा विशेष में पाए जाने वाले स्वनिमों और उसकी व्यवस्था का विशेष अध्ययन स्वनिम विज्ञान है । दूसरे शब्दों में स्वनिम विज्ञान भाषा विज्ञान की वह शाखा है जिसमें भाषा की लघुत्तम व्यवस्थापक इकाई 'स्वनिम' का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है । भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में भाषा के विभिन्न स्तरों का अध्ययन किया जाता है । इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि भाषा की लघुत्तम इकाई 'स्वन' है । ध्वनि के अभाव में भाषा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । भाषा विज्ञान में स्वन के अध्ययन संदर्भ को 'स्वन विज्ञान' की संज्ञा दी जाती है ।

ध्वनि शब्द ध्वन् धातु में इण् (इ) प्रत्यय के योग से बना है । भाषा विज्ञान के गंभीर अध्ययन में ध्वनिविज्ञान एक महत्त्वपूर्ण शाखा बन गई है । इसके लिए ध्वनिशास्त्र, ध्वन्यालोचन, स्वन विज्ञान, स्वनिति आदि नाम दिए गए है । अंग्रेजी में उसके लिए Phonetics और Phonology शब्दों का प्रयोग होता है । इन दोनों शब्दों की निर्मिति ग्रीक के 'Phone' से है ।

भाषा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में भाषा के विभिन्न स्तरों का अध्ययन किया जाता है । उनके सापेक्ष स्वनिमविज्ञान की स्थिति इस प्रकार है ।

भाषा के स्तर (क्रमशः बढ़ते क्रम में)	भाषा विज्ञान की शाखाएँ
स्वनिम	स्वनिम विज्ञान
रूपिम शब्द (पद)	रूप विज्ञान
पद बंध उपवाक्य वाक्य	वाक्यविज्ञान
प्रोक्ति	प्रोक्ति विश्लेषण

इसके अतिरिक्त 'अर्थ' पर विचार करने के लिए भाषा विज्ञान की एक शाखा 'अर्थ विज्ञान' भी है जो भाषा संरचना के उपर्युक्त सभी स्तरों से संबंध होती है । रूपिम से लेकर प्रोक्ति तक सभी भाषिक स्तरों पर अर्थ पाया जाता है और उसी के अनुरूप विश्लेषण संबंधी कार्य किया जाता है ।

'स्वनिम' अर्थहीन (किन्तु अर्थभेदक) होते हैं । इसलिए इस स्तर पर अर्थ की कोई विशेष भूमिका नहीं होती । इसमें अर्थ केवल बड़ी इकाईयों के निर्मित होने या न होने के निर्धारण को प्रभावित करता है ।

परिभाषा तथा स्वरूप :-

भाषा का मूल रूप उसका वाचिक (बोला गया) रूप है । वाचिक भाषा में मानव मुख से उच्चारित जिन ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है उन्हें 'स्वन' (Phone) कहते है ।

किसी बोले गए वाक्य या शब्द के लिए बोले जा सकने वाले लघुतम खंड 'स्वन' हैं। स्वनों का अध्ययन स्वनविज्ञान में किया जाता है । स्वनिम विज्ञान में किसी भाषा विशेष के स्वनों का विश्लेषण करते हुए 'स्वनिमों' और 'उपस्वनों' की व्यवस्था का विश्लेषण किया जाता है । साथ ही भाषा विज्ञान की यह शाखा स्वनिमों के प्रकार्य का विवेचन भी करती है । स्वनिम विज्ञान के बारे में डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है, "स्वनिम विज्ञान वह विज्ञान है जिनमें किसी भाषा में प्रयुक्त स्वनिमों (ध्वनिग्रामों) तथा उनसे संबंद्ध पूरी व्यवस्था पर विचार करते हैं । इसके अंतर्गत स्वनिम (ध्वनिग्राम) तथा उपस्वन (संध्वनि) का निर्धारण, उपस्वन का वितरण, स्वर और व्यंजन स्वनिमों का उस भाषा में प्रयुक्त संयोग एवं अनुक्रम प्राप्त खंड्येतर स्वनिमों (बलाघात, दीर्घता, अनुनासिकता, संहिता, अनुतान) की व्यवस्था के रूप में मिलने पर घटित होने वाले स्वनिमिक परिवर्तन आदि स्वनिमिक व्यवस्था से संबंद्ध सारी बातें आती है ।" (भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा)

भाषा विज्ञान परिभाषा कोश (खंडन) के अनुसार किसी भाषा के सार्थक स्वनों का व्यतिरेक और विरोध के आधार पर अध्ययन तथा उसके वितरण और व्यवस्था का विश्लेषण 'स्वनिम विज्ञान' है ।

इसी प्रकार ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में इसे "The system of contrastive relationships among the Speech Sounds that constitute the fundamental components of a language." बताया गया है, अर्थात यह वाक् ध्वनियों के बीच प्राप्त व्यतिरेकी संबंधो की उस व्यवस्था का अध्ययन है, जिसके द्वारा किसी भाषा के आधारभूत घटकों का निर्माण किया जाता है ।

कोलिंस इंग्लिश डिक्शनरी में संक्षेप में इसको -

"The study of the Sound System of a language or of languages in general" कहते हुए परिभाषित किया गया है । अर्थात यह किसी भाषा का ध्वनि व्यवस्था या सामान्य शब्दों में भाषाओं की ध्वनि व्यवस्था का अध्ययन है ।

"किसी भाषा या बोली में स्वनिम (Phoneme) उच्चारित ध्वनि की सबसे छोटी इकाई है । स्वनिम के लिए ध्वनिग्राम, स्वनग्राम आदि शब्द भी प्रयुक्त होते है ।"

अंग्रेजी में इसका पर्यायी शब्द फोनीम (Phoneme) है । Phoneme के लिए प्रयुक्त होने वाला 'स्वनिम' शब्द 'ध्वनिग्राम' की अपेक्षा कहीं अधिक नया है, किन्तु आजकल इसका ही प्रयोग चल रहा है ।

स्वनिम के स्वरूप के संदर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । विभिन्न विद्वानों ने इसे भिन्न - भिन्न विषयों से सम्बंधित माना है । ब्लूमफील्ड और डैनियल सापीर इसे मनो-वैज्ञानिक इकाई मानते हैं । डब्ल्यू. एफ. टवोडल स्वनिम को अमूर्त काल्पनिक इकाई मानते हैं । स्वन या

ध्वनि - परिवर्तन से सदा अर्थ - परिवर्तन नहीं होता है, जबकि स्वनिम - परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन निश्चित है ।

स्वनिम की अवधारणा और पहचान :-

स्वनिम किसी भाषा की लघुतम अर्थ भेदक इकाई है । इसकी सता अमूर्त होती है और यह मानव मस्तिष्क में होता है । मानव मस्तिष्क में स्वनिम केवल संकल्पनात्मक रूप में रहता है और उसी के आधार पर मनुष्य उसका उपयोग बार - बार भाषा उत्पादन (अभिव्यक्ति) और बोधन के लिए करता है । इसी कारण एक ही स्वनिम का हजारों - लाखों बार व्यवहार संभव हो पाता है । उदाहरण के लिए हमारे मस्तिष्क में 'क', 'म', 'ल' और 'अ' स्वनिम है । इनके आधार पर हम निम्नलिखित शब्द निर्मित कर सकते हैं । -

कमल, कलम, कल, कम, मल आदि । -

इनमें 'क' का प्रयोग ४ बार हुआ है जो स्वन या ध्वनियाँ हैं । इन्हें क१, क२, क३ और क४ से व्यक्त किया जा सकता है । किंतु इनके मूल में एक ही इकाई ।क। है जो इनका स्वनिम है । यही बात 'म', 'ल' और 'अ' के बारे में लागू होती है । स्वनिमों के दो स्लैश के बीच ('।।') में प्रदर्शित किया जाता है ।

किसी नई भाषा के स्वनिमों की पहचान करना एक कठिन और श्रमसाह्य कार्य है । इसके लिए उस भाषा के वार्तालापों या संवादों का रिकार्ड करना पडता है । इसके पश्चात रिकार्ड की हुई सामग्री में से एक - एक शब्द को अलग अलग चिन्हित किया जाता है । तदुपरांत प्रत्येक शब्द को भिन्न संदर्भो में बार - बार सुनकर उसमें प्रयुक्त स्वनिमों का अनुमान लगाया जाता है । फिर उन स्वनिमों का दूसरे शब्दों में प्रयोग किस प्रकार हुआ है इसका परीक्षण किया जाता है । इस प्रकार के विस्तृत अध्ययन द्वारा स्वनिमों की पहचान की जाती है ।

४.४ वाग अवयव और उनके कार्य

शरीर के जिन अवयवों के सहयोग से ध्वनि का उत्पादन संभव होता है उसके समूह को वाग्यंत्र कहते हैं । यह परिभाषा आंशिक रूप से ही तर्कसंगत लगती हैं । क्योंकि मनुष्य अपनी विभिन्न अंगुलियों के माध्यम से तबले, हारमोनियम और सितार आदि से ध्वनि उत्पादन करता है ।

यहाँ ज्ञातव्य है कि ध्वनि - उत्पादन में शरीर के श्वसन तंत्र और पाचन - तंत्र के अनेक भाग विशेष सहयोगी होते हैं । ध्वनि - उत्पादक के संदर्भ में इन अंगों की, अपरिहार्य रूप से चर्चा की जाती है । श्वसन नालिका और भोजन - नालिका ध्वनि - उत्पादन में विशेष भूमिका निभाती हैं । ये दोनों नलिकाएँ ऊपर और नीचे अवश्य है, किन्तु कंठ-स्थल पर दोनों एक - दूसरे से मिली हुई है। भोजन नालिका मुख से भेजे गए भोजन को अमाशय की ओर ले जाती है । कंठ के कुछ ऊपर तक ध्वनि उत्पादक निश्वास का मार्ग और भोजन मार्ग एक ही होता है । उसके पश्चात अलग होता है । श्वास नलिका नाक से चलकर फेफड़े तक जाती है । श्वास मार्ग

ध्वनि - उत्पादक प्रक्रिया में सर्वाधिक सहयोगी होता है । ध्वनि - उत्पादन में फेफड़े से चली वायु कभी मुख मार्ग से बाहर आती तो कभी नासिका के मार्ग से ।

इस प्रकार विभिन्न ध्वनियों का उत्पादन होता है । ध्वनि उत्पादन में सहयोगी अंग निम्नलिखित है ।

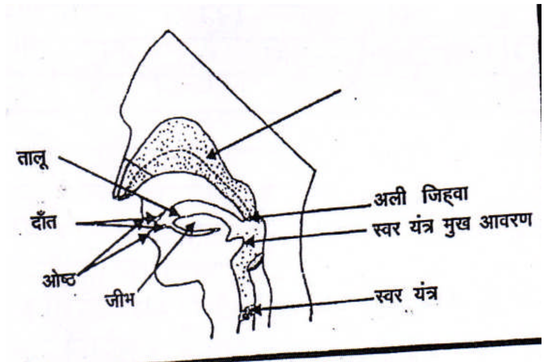

ध्वनि-यंत्र

१. फेफड़े (Lungs) :-

प्राणियों में श्वसन प्रक्रिया के मूलाधार फेफड़े हैं । मनुष्य के जीवन पर्यंत श्वसन प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती हैं । निद्रावस्था में शरीर के अधिकांश भाग शिथिल हो जाते हैं, किन्तु श्वसन प्रक्रिया फेफड़े के सहारे चलते रहते है । इस प्रक्रिया के अवरोध होने पर जीवन का अन्त संभावित होती है । श्वसन में शुद्ध वायु अर्थात ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और निःश्वास में दूषित वायु अर्थात कार्बन डाइ ऑक्साइड निकलती है । इसे प्रक्रिया में जीवन के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की उपलब्धि होती रहती है । यह भी नितान्त सत्य है कि यदि मनुष्य को कुछ देर तक ऑक्सीजन न मिले तो मृत्यु निश्चित है ।

मनुष्य की ध्वनि - उत्पादन प्रक्रिया में निःश्वास का ही उपयोग होता है । इसके विपरीत श्वास लेते हुए एक मात्र ध्वनि की उत्पादन होती है जिसे 'क्लिक' ध्वनि कहते हैं । इसमें दोनों होठों को मिलाकर वायु अन्दर खींचते हुए ध्वनि उत्पन्न की जाती है । माँ जब अपनी संतान को प्यार से चुम्बन लेती है तो ऐसी ही ध्वनि का उत्पादन होता है । श्वसन प्रक्रिया में बाहर निकलने वाली दूषित वायू से ही ध्वनि की उत्पत्ति होती है । यह निरर्थक वायु मनुष्य जाति के परम उपयोगी सिद्ध हुई है । मनुष्य की भाषा का अस्तित्व ही श्वसन के निरर्थक तत्त्व (बाई - प्रोडक्ट) पर आधारित है । भाषा निश्चय ही मनुष्य की उन्नति एवं विकास का परम आधार है । फेफड़े से श्वास - निःश्वास की प्रक्रिया चलती रहती है । जिससे ध्वनि - उत्पादन का क्रम चलता रहता है । माना कि फेफड़े का कार्य रक्त शुद्धिकरण के लिए ऑक्सीजन ग्रहण करना तथा कार्बनडाइऑक्साइड बाहर निकालना है, किन्तु इसी क्रम में ध्वनि उत्पत्ति भी सम्भव है । इस प्रकार फेफड़े ध्वनि - उत्पादन के प्रमुख अंग हैं ।

२. स्वर - यंत्र (Laryns) :-

फेफड़े के कुछ ऊपर श्वास नलिका में स्वर - यंत्र नामक विशेष वाग्यंत्र होता है । फेफड़े से निकली वायु स्वर - यंत्र से होकर ही बाहर आती है । स्वर-यंत्र में दी मांसल

झिल्लियाँ होती हैं जिन्हें स्वर-यंत्री कहते हैं । स्वर-तंत्रियाँ आवश्यकतानुसार आगे या पीछे खिसक कर स्वर-यंत्र के मुख को छोटा या बड़ा आकार प्रदान करती है । इन झिल्लियों के माध्यम से स्वर-यंत्र के मुख की अनेक आकृतियाँ बनती हैं । किन्तु इन्हें मुख्यतः तीन रूपों में विभक्त करते हैं ।

(क) स्वर - यंत्र की प्रथम स्थिति जिसमें स्वर तंत्रियाँ शिथिल रूप से अर्थात् यथावत पड़ी रहती हैं । दोनों झिल्लियों के मध्य पर्याप्त स्थान होता है । श्वास और निःश्वास की वायु, अनवरत चलती रहती है । झिल्लियाँ खुली रहने के कारण निः श्वास की वायु स्वर-यंत्र में बिना घर्षण के बाहर आ जाती है अतः अघोष ध्वनियों का उत्पादन होता है ।

(ख) जब स्वर - यंत्र की तंत्रियाँ आपस में निकट आकर लगभग सट जाती हैं तो फेफड़े से चली वायु तंत्री से घर्षण कर बाहर निकलती है, जिससे तंत्रियों में कम्पन होता है । इस स्थिति में घोष या संघर्ष ध्वनियों का उत्पादन होता हैं ।

(ग) स्वर - यंत्र की दोनों तंत्रियाँ एक - दूसरे से सटी हुई हों और कोई एक कोना खुला हुआ हो तो निःश्वास की वायु फुस्-फुस् की हल्की ध्वनि के साथ आकर आती हैं । इसलिए इसे फुस्-फुस् ध्वनि कहते हैं । जब एक व्यक्ति किसी के कान के निकट मुँह कर धीरे-धीरे ऐसे कहने का प्रयत्न करता है कि दूसरे अन्य को सुनाई न दे तो ऐसी ध्वनि का उत्पादन होता है । स्वर-यंत्र निश्चय ही ध्वनि उत्पादन क्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है । दो कोमल तंत्रियों से थोड़ा और बहुत और और बहुत विस्तृत आकार धारण कर विविध ध्वनियों की उत्पत्ति होती है । जिस प्रकार वंशी के कुछ एक सीमित छिद्र को बन्द - खोलकर विविध ध्वनियों का उत्पादन किया जाता है ।

स्वर-यंत्र ध्वनि-उत्पादन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है । इसके साथ ही जीवन रक्षक अंग भी है । स्वर-यंत्र के ऊपर लगभग कंठ-स्थल पर श्वास नलिका और भोजन नलिका का चौराहा है । यहाँ से श्वास नलिका, भोजन नलिका, मुख विवर, नासिका - विवर, चार मार्ग चारों दिशाओं में जाते हैं । श्वास नलिका और भोजन नलिका का चौराहा हैं । श्वास - निःश्वास और भोजन के समुचित मार्ग क्रमशः नलिका और भोजन नलिका में पहुँचाने का कार्य स्वर-यंत्र मुख आवरण करता रहता है । ध्वनि उत्पादन के समय सिमट कर श्वास मार्ग खोलना और भोजन ग्रहण के समय इस मार्ग को बंद करते रहने का दायित्व इस अंग पर रहता है । जब हम भोजन करते समय बात करते जाते है, तो इस अंग के लिए एक कठिन परीक्षा की घड़ी रहती है । यदि स्वर यंत्र मुख आवरण थोड़ा भी चूक जाए और भोजन का एक भी कण इस आवरण से आगे बढ़ जाए तो संकट की घड़ी आ जाती है । ऐसे में मस्तिष्क के निर्देश पर स्वर यंत्र की दोनो झिल्लियाँ तुरंत ही एक दूसरे से मिलकर फेफड़े का मार्ग बंद कर देती हैं । अगले ही पल मस्तिष्क के निर्देश पर दोनों फेफड़ों पर तेज दबाव पड़ता है । फेफड़े से वायु का तेज प्रवाह स्वर यंत्र को खोलता हुआ बाहर जाता है । इस वायु के तेज प्रवाह में भोजन का कण स्वर-यंत्र के ऊपर से ही ऊपर उठकर बाहर आ जाता है । वायु का प्रवाह इतना तेज होता है कि भोजन - कण प्रश्वास के साथ नाक से बाहर आ जाता है । इस प्रक्रिया से जीवन रक्षा होती है ।

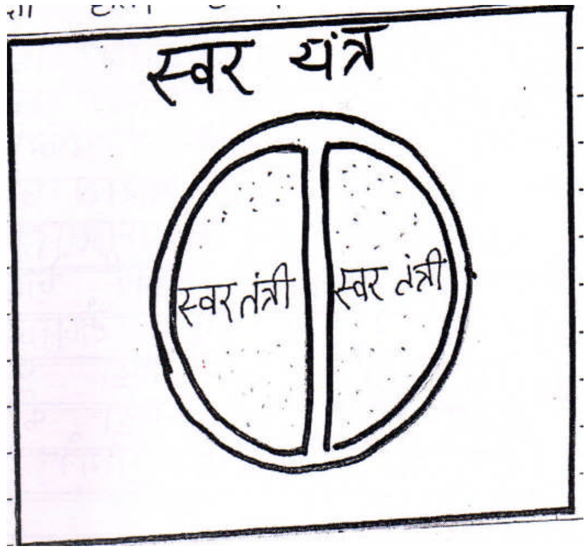

३. स्वर - यंत्र मुख आवरण (Epiglottis) :-

स्वर - यंत्र की सुरक्षा हेतु इसके मुख से ऊपर एक मांसल भाग है । ध्वनि - उत्पादन के समय यह भाग सिमट कर वायु को बाहर निकलने के लिए समुचित मार्ग प्रदान करता है । किन्तु जब भोजन या पेय पदार्थ ग्रहण करते हैं तब यह मांसल आवरण बढ़कर श्वसन मार्ग को ढँक लेते हैं । इससे ग्रहण किया गया खाद्य या पेय पदार्थ सीधे भोजन नलिका में जाता है । यह निर्विवाद सत्य है कि यदि स्वर यंत्र आवरण की चूक के पश्चात् स्वर - यंत्र से भी चूक हो जाए और खाद्य पदार्थ का टुकड़ा भी फेफड़े में पहुँच जाए तो प्राणांत संभावित है इस प्रकार स्वर - यंत्र मुख आवरण जहाँ ध्वनि - उत्पादन का एक सहयोगी अंग है वहीं महत्त्वपूर्ण जीवन रक्षक अंग हैं ।

४. अलिजिव्हा (Iwala) :-

मुख विवर, नासिका विवर, श्वास नलिका और भोजन नलिका के ठीक ऊपर लटकता हुआ मांसल अंग होता है, जिसे अलिजिव्हा, कौवा या घंटी कहते हैं । यह मांसल अंश ध्वनि उत्पादन के समय आवश्यकतानुसार मुख-विवर के मार्ग और नासिका विवर के मार्ग को खोखला व बंद करता है । दोनों मार्गों के अवरोध में अलिजिव्हा अपने स्वरुप घटाता बढ़ाता है । अलिजिव्हा की अवरोधक प्रक्रिया में तीन स्थितियाँ सामने आती है - प्रथम स्वाभाविक अवस्था है जिसका संबंध जीवन - यापन के लिए श्वास - निःश्वास की प्रक्रिया से होता है । ऐसे में अलिजिव्हा शिथिल होकर नीचे लटककर मुख मार्ग को अवरूद्ध कर देती है । मुँह भी बंद होता हैं । सहज श्वसन क्रिया इसी अवस्था में होती है ।

प्रथम अवस्था

द्वितीय अवस्था में अलिजिव्हा आगे बढ़कर नासिका मार्ग को पूर्ण रूप से अवरूद्ध कर देती है । इस प्रकार श्वास - निःश्वास की वायु मुख विवर से फेफड़े की ओर और फेफड़े से चली निःश्वास की वायु मुख विवर से होती हुई बाहर की ओर आती है । ऐसे में मौखिक ध्वनियों (स्वर - व्यंजन) का उच्चारण होता है ।

द्वितीय अवस्था

तृतीय अवस्था में अलिजिव्हा से बढ़कर नासिका मार्ग को कुछ अवरूद्ध कर देती है । किन्तु कुछ भाग खुला भी रहता है । इसी स्थिति में निःश्वास की कुछ वायु नासिका मार्ग से निकलती है, तो कुछ मुख मार्ग से । अनुनासिक स्वरों का उच्चारण अलिजिव्हा की इसी स्थिति में होती है । उर्दू की संघर्षो ध्वनि क, ख, ग के उच्चारण में अलिजिव्हा, जिव्हापश्च यां जिव्हा मूल को स्पर्श करती है या फिर उसके निकट आ जाती है ।

तृतीया अवस्था

५. नासिका विवर (Nasal Cavity) :-

श्वसन प्रक्रिया में वायु का फेफड़ों से अवागमन नासिका-विवर से चलता रहता है । श्वसन नलिका बाहर की ओर से दो भागों में विभक्त होती है और आगे चलकर एक हो जाती है । अलिजिव्हा के पश्चात भोजन नलिका से जुड़कर आगे बढ़ती है । स्वर-यंत्र मुख आवरण के पश्चात श्वास-नलिका के पीछे भोजन नलिका होती है जो अमाशय तक जाती है । मुख मार्ग के अवरूद्ध होने के पश्चात वायु जब नासिका मार्ग से निकलता हैं तो नासिक्य ध्वनियों - ङ - ञ, ण, न, म का उत्पादन होता हैं । जब नासिका मार्ग से कुछ वायु और मुख मार्ग से कुछ वायु साथ-साथ बाहर आती है, तो अनुनासिक ध्वनियों अँ, आँ, एँ, ओं आदि का उत्पादन होता है ।

६. ताल (Palate) :-

मुख विवर के ऊपरी भाग को तालु कहते हैं । इसका विस्तार आगे की ओर दाँत से पीछे अलिजिव्हा के मध्य भाग में है । तालु के अन्तर्गत पीछे की ओर से क्रमशः कोमल तालु, गुर्द्धा, कठोर ताल और वर्त्स की स्थिति होती है । ये सभी स्थिर अंग हैं । निःश्वास की वायु और जीभ के विभिन्न भागों का स्पर्श विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में सहयोगी होती है ।

७. जिव्हा (Tongue) :-

मुख विवर के निचले भाग में जिव्हा की स्थिति होती है । यह मांसल अंग ध्वनि उत्पादन में विशेष सहयोगी होता है । संस्कृत में जीभ का पर्यायवाची शब्द वाणी है । वाणी का एक अर्थ भाषा भी है । इस प्रकार जिव्हा का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है । जीभ के विभिन्न भाग ध्वनि उत्पादन में अपनी विशेष भूमिका में सामने आते है । इसलिए इसको जिव्हा नोक, जिव्हा अग्र, जिव्हा मध्य, जिव्हा पश्च और जिव्हा मूल पाँच भागों में विभक्त करते है । जीभ की गतिशीलता ध्वनि उत्पादन में विशेष सहयोगी सिद्ध होती है ।

८. दाँत (Teeth) :-

मुख के आगे के भाग के दोनों जबड़ों में दंत-पंक्तियाँ होती हैं । दाँतों का मुख्य कार्य भोजन के अनुकूल रूप में ग्रहण करने के साथ ध्वनि-उत्पादन में सहयोग करना है ।

९. ओष्ठ (Lips) :-

मुख का सबसे आगे का मांसल भाग ओष्ठ एक ओर भोजन ग्रहण करने में सहयोगी होता है तो दूसरी ओर ध्वनि - उत्पादन में भी सहयोगी सिद्ध होता हैं । इन दोनों प्रक्रियाओं में ऊपरी ओष्ठ एवं निचले ओष्ठ दोनों की भूमिका समान रूप से महत्त्वपूर्ण है । दोनों ओष्ठ मिलकर ही ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया पूरी करते है ।

ध्वनि उत्पादन में फेफड़ों से लेकर ओष्ठ तक के सभी अंगों की अपनी-अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । सभी अंगों की समन्वित भूमिका से ही भाषा की विभिन्न ध्वनियों का अनुकूल उत्पादन संभव होता है ।

१०. मूर्धा :-

ऊपर की दाँत पंक्ति के निकट के कठोर तालु के खुरदरे भाग को मूर्धा कहते हैं ।
ट, ठ, ड, ढ आदि का उच्चारण मूर्धा से ही होता है ।

११. वर्त्स :-

ऊपर की दांतों के निकट तालु - भाग को वर्त्स कहते हैं ।
'न' का उच्चारण वर्त्स की सहायता से होता है ।

१२. दंत मूल :-

कठोर तालु के अंतिम छोर को दंत मूल कहते हैं ।
यहीं पर दाँतों की जड़ें होती हैं ।

१३. मुख विवर :-

अलिजिव्हा के एक ओर नासिका विवर तथा दूसरी ओर मुख विवर है । मुख विवर में दंत, वर्त्स, तालु, जिव्हा आदि वागंग होते हैं ।

१४. श्वास नली :-

श्वास नली के माध्यम से ही वायु नासिका से फेफड़ों तक पहुँचती है और श्वास नली के माध्यम से ही बाहर निकलती है । स्वन प्रक्रिया में श्वास नली का अत्याधिक महत्त्व है ।

१५. स्वर यंत्र :-

स्वर यंत्र श्वास नाल के ऊपरी किनारे के पास विद्यमान होता है । जब निःश्वास वायु फेफड़ों से बाहर निकलती हैं तो श्वास नाल से होती हुई स्वर यंत्र तक पहुँचती है । इस स्वर यंत्र से ही स्वर तंत्रियाँ होती हैं ।

१६. स्वर तंत्रियाँ :-

स्वर यंत्र में पतली झिल्ली से बने दो पतले पर्दे होते हैं जो अत्यंत लचीले होते है । इनको ही स्वर तंत्री कहते हैं । स्वर तंत्रियों के कंपन से ही अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती है ।

१७. काकल :-

स्वर तंत्रियों के बीच के खुले भाग को काकल कहते है । इसके रास्ते की वायु बाहर निकलती है । इसे स्वर-यंत्र मुख भी कहते हैं ।

१८. कंठ पिटक :-

गले का वह भाग जो कुछ उठा रहता है उसे कंट पीटक कहते हैं । सामान्य भाषा में इसे 'टेटुवा' कहते हैं । यह ध्वनियों का उच्चारण करने व उन्हें विविध रूप देने में सहायक है ।

१९. कंठ मार्ग :-

कंठ मार्ग मुख के नीचे तथा कंठ छिद्र के ऊपर होता है । उच्चारण में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है ।

४.५ स्वनिम की विशेषताएँ

स्वनिम की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :-

१. स्वनिम भाषा की लघुतम इकाई है ; यथा, अ, त, क, प आदि.
२. स्वनिम विभिन्न समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है । यदि एक ध्वनि का एक से अधिक या अनेक तरह से उच्चारण किया जाए, तो उसके लिए एक ही स्वनिम होगा । यथा - क ध्वनि को दस व्यक्ति बोले या एक ही व्यक्ति दस बार बोले तो इसके दस रूप होंगे, किन्तु इन दसों ध्वनि-रूपों के लिए एक ही स्वनिम होगा ।
३. स्वनिम अर्थ भेदक इकाई है; यथा - तन और मन शब्दों में अर्थ - भिन्नता त और म स्वनिमों की भिन्नता के कारण हैं । 'त' के न और मन के 'न' के उच्चारण में सूक्ष्म भिन्नता अवश्य है, किन्तु दोनों एक ही स्वनिम से सम्बन्धित है; इसलिए इसे अर्थ - भिन्नता नहीं होती है ।

४. स्वनिम उच्चारित भाषा से सम्बन्धित है । लिखित भाषा से इनका सम्बन्ध नहीं होता । लिखित भाषा में इसी प्रकार की इकाई लेखिम होती है । हिन्दी में एक स्वनिम है जिसके लिए अंग्रेजी में कई लेखिमों का प्रयोग होता है ; यथा - C > कैमल - K > काइट > केमेस्ट्री Chemistry, Question > चैक Cheque CK > बैक Back आदि ।

५. प्रत्येक भाषा के अपने स्वनिम होते हैं, जो अन्य किसी भी भाषा के स्वनिम से भिन्न होते है । अर्थात स्वनिम भाषा विशेष पर आधारित होते हैं ; यथा - प, फ हिन्दी के स्वनिम हैं, जब कि अन्य भाषा में ये ध्वनियाँ भी हो सकती हैं । जब कोई व्यक्ति अपनी भाषा के स्वनिमों से भिन्न किसी अन्य भाषा के स्वनिमों का प्रयोग करता है, तो उनके उच्चारण में कठिनाई आती है । ऐसे समय वह न स्वनिमों की भिन्नता के आधार पर विभिन्न भाषा - भाषियों की पहचान सम्भव है यदि हिन्दी में जल है तो बंगला में जॉल ।

६. स्वनिम समीपवर्ती ध्वनियों से प्रभावित होते हैं ; त अघोष, अल्पप्राण, दन्तय ध्वनि जब न के साथ प्रयुक्त होती है तो नासिक्य ध्वनि न का प्रभाव उस पर पड़ जाता है ।
उदाहरण – तन झ तॅन ।

७. सभी भाषाओं में ध्वनियों की एक निश्चित व्यवस्था होती है जिसके आधार पर उनमें ध्वन्यात्मक संतुलन बना रहता है ; यथा - हिन्दी के क, ध, झ, ठ, ढ आदि स्वनिमों का ज्ञान हो तो स्वनिम व्यवस्था के अनुसार अल्पप्राण - महाप्राण के क्रम के अनुसार 'क' वर्ग में 'घ' के अतिरिक्त 'ख' एक अन्य महाप्राण ध्वनि की सम्भावना स्पष्ट हो जाएगी इस प्रकार स्वनिम - व्यवस्था पूरी हो जाती है ।

८. कभी - कभी दो ध्वनियाँ बिना अर्थ - परिवर्तन के एक - दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होती हैं । यह प्रायः बोलियों की सहजीकरण की स्थिति में होता है, किन्तु यथा - कक्षा मानक उच्चारण में भी ऐसे प्रयोग मिल जाते है ; यथा क > क > ख > ख, ज > ज इल्जाम प्रथम शब्द का अर्थ दोष हैं और द्वितीय अर्थ है - घोडे के मुख में लगाम देना । यहाँ दोनों ही शब्द समान दोष अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं ।

९. प्रत्येक भाषा के स्वनिमों की संख्या भिन्न होती है ।

१०. यदि कोई ध्वनि एक बार निश्चित हो जाए कि स्वनिम है तो वह सदा प्रत्येक स्थिति में स्वनिम होगी । Once phoneme ever phoneme

११. यदि कोई ध्वनि आदि, मध्य और अन्त में से किसी एक में मिले तो स्वनिम स्थिति विचारणीय है । हिन्दी में ऐसी स्थिति नहीं दिखाई देती हैं । अंग्रेजी ध्वनियाँ P + K की आदि स्थिति में क्रमशः P, h, Th, Kh हो जाती हैं, किन्तु मध्य और अंत में पूर्ववत PTK रहती हैं ।

आदि मध्य अन्य Ph-p- - Pth-t-tkh-K--K प्रवर्तित ध्वनि केवल आदि में है । मध्य तथा अन्त स्थिति में अधिक परिवेश में प्रयुक्त होने से Pt K स्वनिम हैं । ये ध्वनियाँ आपस में संस्वन हैं ।

१२. स्वनिम ज्ञान से भाषा के शुद्ध उच्चारण में सरलता होती है । स्वनिम के माध्यम से ही किसी भाषा की मूल - ध्वनियों का ज्ञान होता है । इस प्रकार भाषा - शिक्षण में स्वनिम ज्ञान का विशेष महत्त्व है ।

१३. स्वनिम उच्चारित भाषा से सम्बन्धित है । इनके माध्यम से भाषा की ध्वनियों की संख्या का नियंत्रण होती है । इस प्रकार के नियंत्रण से भाषा उच्चारण में समुचित व्यवस्था बनी रहती है । स्वनिम व्यवस्था से नई ध्वनियों के आगमन पर उनका सीखना संभव है और सरल होता है ।

१४. स्वनिम भाषा की अर्थ भेदक इकाई है । भाषा की अन्य इकाईयाँ - शब्द, पद, वाक्य आदि का ज्ञान तब तक संभव नहीं होता जब तक स्वनिम का ज्ञान ही - क्योंकि भाषा की परवर्ती बृहत्तर इकाईयाँ स्वनिम पर आधारित है ।

१५. लिपि - निर्माण में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । किसी भाषा के स्वनिमों के निश्चयन के पश्चात ही लिपि का निर्माण होता है । इस प्रकार स्वनिम को लिपि का मूलाधार कह सकते हैं ।

१६. आदर्श लिपि का निश्चय ही स्वनिम के माध्यम से होता है । जिस लिपि में एक स्वनिम के लिए एक लिपि चिन्ह हो, उसे आदर्श लिपि कह सकते है ।

१७. लिपि - निर्माण में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । किसी भाषा के स्वनिमों के निश्चयन के पश्चात ही लिपि का निर्माण होता है । इस प्रकार स्वनिम को लिपि का मूलाधार कह सकते है ।

१८. आदर्श लिपि का निश्चय ही स्वनिम के माध्यम से होता है । जिस लिपि में एक स्वनिम के लिए एक लिपि चिन्ह हो, उसे आदर्श लिपि कह सकते है ।

१९. स्वनिम के माध्यम से ही अन्तरराष्ट्रीय लिपि I.N.P.A. का रूप सामने आया है । सभी भाषाओं के विभिन्न स्वनिमों के लिए इसमें समुचित रूप से एक - एक चिन्ह की व्यवस्था होती है । इस प्रकार भाषा के शुद्ध उच्चारण, आदर्श लिपि और अन्तरराष्ट्रीय लिपि निर्माण आदि में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है ।

४.६ स्वनिम के भेद

स्वनिम के भेद दो प्रकार के होते है -

४.६.१ खंड्य स्वनिम और

४.६.२ खंड्येतर स्वनिम

हिंदी के समस्त स्वर और व्यंजन ध्वनियों उनके वर्गों तथा उनकी स्वनिमिक स्थिति से आपका परिचय कराया गया । इनमें से अधिकांश ध्वनियों का उच्चारण स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है । इनको खंड्य ध्वनियाँ कहा जाता है । लेकिन भाषाओं में ऐसी भी ध्वनियाँ होती है जो स्वंतत्र रूप से उच्चारित न होकर किसी स्वतंत्र ध्वनि का सहारा लेकर उच्चारित की जाती है ।

इन्हें खंड़ेतर ध्वनियाँ कहा जाता है । आप इस इकाई में खड़ीय और खंडेतर ध्वनियों के अंतर समझ पाएँगे ।

४.६.१ खंड्य स्वन या स्वनिम :-

आप स्वर और व्यंजन ध्वनियों (स्वनों की उच्चारणात्मक विशेषताओं) से परिचित हो चुके हैं । यदि कोई आपसे पूछे कि हिंदी की "प्" ध्वनि की उच्चारणात्मक विशेषताएँ क्या हैं तो आप बड़ी आसानी से "प्" ध्वनि के उच्चारणात्मक गुणों को बता सकते हैं कि "प्" एक ओष्ठ्य व्यंजन ध्वनि है जिसका उच्चारण ओठों के पास से किया जाता है । इसके उच्चारण से निचला ओंठ ऊपर के ओंठ का "स्पर्श" करता है । अतः यह एक स्पर्शी ध्वनि है । साथ ही यह "अघोष" तथा "अल्पप्राण" भी है । क्योंकि इसके उच्चारण में स्वरतंत्रियों झंकृत नहीं होती हैं और वायु के अवरोध के बाद मुख से कम मात्रा में वायु बाहर निकाली जाती है । इस प्रकार "प्" ध्वनि के अलग-अलग गुण इस प्रकार लिखे जा सकते हैं ।

/प् / = (ओष्ठ्य
अघोष
अल्पप्राण
स्पर्शी
व्यंजन)

किसी भी ध्वनि के इन ध्वनि - गुणों या उच्चारणात्मक - गुणों को "अभिलक्षण" कहा जाता है । उदाहरण के लिए "ख" तथा "ज" ध्वनि के उच्चारणात्मक गुण या अभिलक्षण इस प्रकार बताए जा सकते है ।

/ख् / = (कंठ्य
अघोष
महाप्राण
स्पर्शी
व्यंजन)

/ज् / = (तालव्य
सघोष
अल्पप्राण
स्पर्श-संघर्षी
व्यंजन)

कहने का तात्पर्य यह है हिंदी में "प्", "ख", "ज्" आदि स्वन जो स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं, एक से अधिक गुणों या अभिलक्षणों को अपने में समाहित किए हुए हैं । जब भी हमें इन स्वतंत्र ध्वनियों का उच्चारणात्मक विवरण देना होता है तब हम इनको छोटे-छोटे खंडों में बाँट कर इनके अलग-अलग अभिलक्षणों को बता देते हैं । दूसरे शब्दों में इसी बात को इस रूप में कहा जा सकता है कि ये ध्वनियाँ ऐसी ध्वनियाँ हैं जिनको अभिलक्षणों या ध्वनि गुणों के छोटे-छोटे खंडों में विभक्त किया जा सकता है ।

"खंड्य" शब्द का अर्थ ही है - "जिसके खंड किए जा सके ।" अतः खंड्य ध्वनियाँ या स्वन वे ध्वनियाँ हैं जिनके अभिलक्षणों के रूप में या ध्वनि-गुणों के रूप में खंड किए जा सकते हों । इस दृष्टि से भाषा में स्वतंत्र रूप से उच्चारित की जाने वाली सभी ध्वनियाँ "खंड्य ध्वनियाँ" कहलाती हैं ।

ये "खंड्य ध्वनियाँ" या स्वन जब किसी भाषा में न्यूनतम युग्मों में प्रयुक्त होकर शब्द का अर्थ परिवर्तित करने की क्षमता रखते हैं । तब हम उन्हें "खंड्य स्वनिम" कहने लगते हैं ।

४.६.२. खंड्येतर स्वन या स्वनिम

भाषा में सभी स्वनों का उच्चारण स्वतंत्र रूप से नहीं किया जाता । कुछ स्वन या ध्वनियाँ ऐसी भी होती हैं जो किसी स्वतंत्र ध्वनि का सहारा लेकर ही उच्चरित की जाती है । उदाहरण के लिए आपने अनुनासिक स्वरों में देखा था कि अनुनासिकता या उच्चारण अलग से स्वतंत्र रूप में नहीं किया जा सकता । यह तो स्वयं में एक ध्वनि-गुण या अभिलक्षण है जो हमेशा स्वरों के साथ ही उच्चारित होता है ।

जिस प्रकार "घोषत्व" या "प्राणत्व" व्यंजनों के अभिलक्षण या ध्वनि गुण हैं उसी प्रकार अनुनासिकता भी स्वरों का गुण हैं । अर्थात् जब आप स्वरों का उच्चारण करते समय वायु को केवल मुख से बाहर निकालते हैं तब मौखिक स्वर उच्चारित होते हैं परन्तु जब वायु मुख के साथ-साथ नासिका से भी बाहर निकाली जाती है तब अनुनासिक स्वर उच्चारित होते हैं ।

जब किसी भाषा में अनुनासिक स्वर मौखिक स्वरों के साथ न्यूनतम युग्मों में प्रयुक्त होकर शब्द का अर्थ परिवर्तित कर देते हैं तब उस भाषा में अनुनासिकता को स्वानिमिक कहा जाता है । हिंदी में अनुनासिकता स्वनिमिक है अर्थात स्वनिम की कोटि में आती हैं । इस प्रकार के स्वनों या स्वनिमों को जो स्वय में ध्वनि गुण या अभिलक्षण है तथा जिनका उच्चारण अलग से स्वतंत्र रूप से न होकर किसी न किसी स्वतंत्र ध्वनि के साथ ही हो सकता है, खंड्येतर, स्वन या खंडेतर स्वनिम कहे जाते हैं ।

"खंडेतर" शब्द का अर्थ है - "खंडों से इतर" अर्थात जिनके खंड करना संभव न हो । अनुनासिकता के अलावा भाषाओं में और भी खंडेतर ध्वनियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें बलाघात, तान, अनुतान, दीर्घता, संघिता आदि उल्लेखनीय हैं ।

खंड्येतर ध्वनियाँ भाषा में स्वतंत्र रूप से उच्चरित नहीं हो सकती । प्रायः खंडेतर ध्वनियाँ शब्दों में अक्षरों का आश्रय लेकर उच्चरित होती है अतः खंडेतर ध्वनियों के अध्ययन के पूर्व "अक्षर" से हमारा क्या तात्पर्य है यह समझना आवश्यक है ।

जैसा कि पहले कहा गया है कि खण्ड स्वनिम विभाज्य हैं और इसमें स्वर और व्यंजन आते हैं । वितरण की विधि से इनका विश्लेषण किया जाता है । इसके अतिरिक्त कुछ स्वनिम ऐसे हैं जो खंड स्वनिमों पर निर्भर है । उन्हें खंड स्वनिमों से पृथक उच्चारित नहीं किया जा सकता है । अतः इन्हें खण्डेतर अविभाज्य या अव्यक्त कहा जाता है । ये पाँच है - मात्रा, सुर, बालाघात, संगम, अनुनासिकता.

a) मात्रा :

इसको दीर्घता भी कहते हैं । स्वर और व्यंजन दोनों में मात्रा या दीर्घता के कारण अन्तर होता है । स्वरों के मात्राभेद को ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत नाम से कहा जाता है । ह्रस्व (१ मात्रा), दीर्घ (२ मात्रा), प्लुत (३ मात्रा या इससे अधिक) इसी कारण अ, आ, अ ऽ में भेद हैं । कम, काम, रामऽ व्यंजनों में भी दीर्घता होती है । संयुक्त व्यंजन दुगुना समय लेते हैं और उससे अर्थभेद भी होता है ।

जैसे - बचा - बच्चा, सजा - सज्जा, पका - पक्का, गदा - गद्दा ।

b) सुर या सुर-लहर :

यह शब्द और वाक्य दोनों स्तरों पर प्राप्त होता है । स्वरतंत्रियों पर कितना तनाव आता है । इस आधार पर इसका भेद किया जाता है । वैदिक साहित्य में स्वर के तीन भेद किए है -

उदात (उच्च)
स्वरित (मध्यम)
और अनुदात (निम्न)
ग्लीसन के सुर के चार भेद किए हैं - अत्युच्च, उच्च, मध्य, निम्न ।
सामवेद में स्वर - संकेत संख्या द्वारा ही प्रचलित था,

१. उदात
२. स्वरित
३. अनुदात

यह अधिक सुविधाजनक है । लौकिक संस्कृत और हिन्दी में सुर का प्रयोग सामान्यतः शब्दों में नहीं होता है, वाक्यों में इसका प्रयोग मिलता हैं । तद्नुसार अर्थभेद भी होता है ।

c) बलाघात :

संस्कृत और हिन्दी में बलाघात पाया जाता है । बलाघात फेफड़ों से आने वाले वायु-प्रवाह की तीव्रता पर निर्भर होता है । अधिक या कम तीव्रता के आधार पर इसके चार भेद किए जाते है । १. तीव्र, २. मन्द, ३. संश्लिष्ट, ४. हीन

जैसे - मैं कानपुर जा रहा हूँ ।
(मैं ही कानपुर जा रहा हूँ ।)
(मैं ही जा रहा हूँ कानपुर ।)
(मैं कानपुर ही जा रहा हूँ ।)

d) संगम :

शब्दों और वाक्यों के कुछ ध्वनियाँ इस प्रकार संयुक्त रूप में मिलती है कि पदच्छेद या यति के द्वारा उनके विभिन्न अर्थ निकलते हैं ।

e) अनुनासिकता :

संस्कृत और हिन्दी में अनुनासिकता के आधार पर अर्थभेद पाया जाता है । इनके न्यूनतम विरोधी युग्म भी मिलते हैं ।

जैसे - गोद - गोंद
काटा - कांटा

दाव - दांव
है - हैं
हो - हों आदि

४.७ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने स्वन विज्ञान उसकी परिभाषा, स्वरूप, वाग अवयव और उनके कार्य तथा स्वनिम की विशेषताएँ आदि का अध्ययन किया। 'स्वन' भाषा की लघुत्तम इकाई है। किसी भाषा विशेष में पाए जानेवाले स्वनिमों और उसकी व्यवस्था का विशेष अध्ययन ही स्वनिम विज्ञान है, इसे जान सके। साथ ही स्वनिम विज्ञान की केंद्रीय विषय-वस्तु 'स्वनिम' का विवेचन करते हुए अनुप्रयोगात्मक पक्ष को भी उद्‌घाटित किया गया है।

४.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) ब्लूमफील्ड और डैनियल सापीर किसे मनोवैज्ञानिक इकाई मानते है।
२) मुख विवर के ऊपरी भाग को क्या कहते हैं?
३) स्वनिम के भेद कितने है?
४) स्वर तंत्रियों के बीच के खुले भाग को क्या कहते हैं?

४.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) स्वन विज्ञान की परिभाषा और स्वरूप को स्पष्ट करे।
२) वाग अवयव और उनके कार्य पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
३) स्वन विज्ञान की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
४) स्वनिम के भेदों पर विशद चर्चा करें।

४.१० संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी
२) भाषाशास्त्र तथा हिंदी भाषा की रूपरेखा - डॉ. देवेंद्र कुमार शास्त्री
३) भाषा विज्ञान के अधुनातम आत्राय - डॉ. अंबादास देशमुख
४) भाषा विज्ञान की रूपरेखा - द्वारका प्रसाद सक्सेना
५) भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी

❖❖❖❖

इकाई-५

स्वन परिवर्तन

इकाई का स्वरूप :

५.१ इकाई का उद्देश्य
५.२ प्रस्तावना
५.३ स्वन परिवर्तन की दिशाएँ
५.४ स्वन परिवर्तन के कारण
५.५ हिंदी स्वरों और व्यंजनों का वर्गीकरण
५.६ सारांश
५.७ लघुत्तरीय प्रश्न
५.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न
५.९ संदर्भ ग्रंथ

५.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से परिचय होगा ।

i) स्वनिम में परिवर्तन की दिशाएँ स्पष्ट होगी।
ii) स्वन परिवर्तन के कारण को समझ पाएँगें।
iii) हिंदी स्वरों तथा व्यंजनो के वर्गीकरण से परिचय होगा।

५.२ प्रस्तावना

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। इसी परिवर्तन से विश्व में अनेक वस्तुओं में निरन्तर परिवर्तन होता है और हो रहा है। संसार की प्रत्येक वस्तु संसरणशील परिवर्तनशील है। विश्व की प्रत्येक भाषाओं में सतत परिवर्तन हो रहा है। इसी परिवर्तन से भाषा की ध्वनियों में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है।

५.३ स्वन - परिवर्तन की दिशाएं

इसे ध्वनि - विकार या ध्वनि विकास भी कहते है । भाषा सतत परिवर्तनशील है । परिवर्तन के इस क्रम में कभी ध्वनियाँ पूर्णत: बदल जाती है, कभी कुछ परिवर्तित होती है । कभी

ध्वनि का लोप होता है, तो कभी आगम होता है । इस प्रकार ध्वनियों में होने वाले विविध विकारों को ध्वनि - परिवर्तन या विकास कहते है । इसमें मुख्यतः निम्नलिखित दिशाएं दिखाई देती है ।

१. आगम

जब किसी शब्द में किसी ध्वनि का नया प्रयोग होता है, तो उसे आगम कहते हैं । शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त स्थित में स्वर तथा व्यंजनों दोनों के ही आगम सम्भव हैं ।

क) स्वरागमन : जब शब्द में किसी नए स्वर का प्रयोग आदि, मध्य या अन्त स्थिति में हो तो, स्वरागमन कहते है; यथा

आदि स्वरागमन - स्कूल > इस्कूल, स्नान > अस्नान,
मध्य स्वरागमन - पूर्व > पूरब, मर्म > मरम,
अन्त स्वरागमन - दवा > दवाई, प्रिय > प्रिया

ख) व्यंजनागम : जब शब्द में आदि, मध्य या अन्त स्थिति में किसी व्यंजन ध्वनि का आगम हो; यथा -

आदि व्यंजनागम : उल्लास > हुलास
ओष्ठ > होठ
मध्य व्यंजनागम : वानर > बन्दर
शाप > श्राप
अन्त व्यंजनागम : भौं > भौंह
परवा > परवाह

२. लोप :

आगम का विपरीत लोप है । भाषा प्रवाह में तीव्रता मुख - सुख के कारण यदा - कदा शब्द के आदि मध्य अथवा अन्त में स्वर या व्यंजन ध्वनि का लोप हो जाता है । ध्वनिलोप को स्वर लोप, व्यंजन लोप, अक्षर लोप और सम ध्वनि लोप के रूप में विभाजित कर सकते हैं ।

क) स्वरः लोप : जब शब्द में से किसी स्वर का लोप हो जाता है ; यथा -

आदि स्वर - लोप - अगर > गर
अनाज > नाज
मध्य स्वर लोप - कृप्या
हरदम > हर्दम
अन्त्य स्वर लोप - निंद्रा > नींद
चर्ल > चल

ख) व्यंजन लोप : जब शब्द के आदि, मध्य या अंत से व्यंजन का लोप हो जाता है यथा -

आदि व्यंजन - स्थान > थान
स्थाली > थाली
मध्य व्यंजन - आम्र > आम
उष्ट्र > ऊँट

ग) अक्षरलोप : शब्द के आदि, मध्य या अंत से यदा - कदा अक्षर का लोप हो जाता है; यथा -

आदि अक्षर लोप - शहतूत > तूत
त्रिशूल > शुल
मध्य अक्षर लोप - भंडागार > भंडार
चतुष्क > चौक
अन्त्य अक्षर लोप - मर्कटिक > मकडी
भ्रातजाया > भ्रांतजा

घ) समध्वनि लोप : जब एक शब्द में कोई ध्वनि दो या दो से अधिक बार एक साथ प्रयुक्त होती है और उनमें से एक लुप्त हो जाए : यथा

संवाददाता > संवादाता
खरीददार > खरीदार
नाककटा > नकटा

३. विपर्यय :

जब किसी शब्द के स्वर-व्यंजन या व्यंजन स्वर या विभिन्न अक्षर एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं तो उसे ध्वनि - विपर्यय कहते है । विपर्य स्वर, व्यंजन तथा अक्षर तीनों ही संदर्भो में हो सकता हैं; यथा स्वर विपर्यय - कुछ > कुछ, इक्षु > नखनऊ, ईख > व्यंजन विपर्यय, चाकू > काचु, लखनऊ अक्षर विपर्यय - चावल, दाल > दादल, चाल, कोलतार - तारकोल.

४. समीकरण :

जब कोई ध्वनि अपने समीप की या निकटवर्ती ध्वनि को अपने समान बनाती है तो उसे समीकरण कहते है । समीकरण दो प्रकार के होते हैं ।

क) पुरोगामी समीकरण : जब पूर्ववर्ती स्वर या व्यंजन ध्वनि, परवर्ती को अपने समान बनाती है; यथा -

स्वर समीकरण - हुक्म > हुकुम
जुल्म > जुलुम
व्यंजन समीकरण - चद्र > चक्का
पत्र > पता

ख) पश्चगामी समीकरण : जब परवर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि को प्रभावित करती है; जैसे -

स्वर समीकरण - अंगुली
श्वसुर > सुसुर ;
व्यंजन समीकरण - कर्म > कम्प
शर्करा > शक्कर

५. विषमीकरण :

यह समीकरण की उल्टी प्रक्रिया है । इसमें निकट की दो समान ध्वनियों में से एक ध्वनि परिवर्तित होकर भिन्न रूप धारण कर लेती है । ऐसे परिवर्तन से ध्वनि-श्रवण सरल हो जाता हैं । विषमीकरण भी पुरोगामी तथा पश्चगामी होते है ।

क) पुरोगामी विषमीकरण : जब निकट की दो समान ध्वनियों में से एक ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि ज्यो की त्यों रहती है, किन्तु परवर्ती बदल जाती है; यथा काक काग, कंकण, कंगन ।

ख) पश्चगामी विषमीकरण : जब समीपवर्ती दो समान ध्वनियों में से परवर्ती ध्वनि ज्यो की त्यों रहती है और पूर्ववर्ती ध्वनि बदल जाती है; यथा - मुकुट > मउर, नुपूर > नेउर ।

६. मात्रा भेद :

यदा - कदा शब्द में प्रयुक्त कोई मात्रा से दीर्घ या दीर्घ से ह्रस्व हो जाती है इसे मात्रा भेद कहते हैं ।

क) ह्रस्वीकरण : जब दीर्घ मात्रा ह्रस्व हो जाती है ; यथा ; शून्य - सुन्न, आषाढ > अषाढ़।

ख) दीर्घीकरण : जब ह्रस्व मात्रा दीर्घ हो जाती है ; यथा ; पुत्र > पुत, जिव्हा > जीभ, दुग्ध > दूध ।

७. घोषीकरण :

जब कोई घोषी ध्वनि कुछ समय बाद ध्वनि के रूप में प्रयुक्त होने लगे, तो उसे घोषीकरण कहते हैं; यथा - मकर > मगर ।

(क > ग) काक > काग

(त > द) शती > सदी

८. अघोषीकरण :

इनमें घोष ध्वनियाँ अघोष बन जाती है ;

यथा - अदद > (अ > त)

मदद > (द > त)

९. महाप्राणीकरण :

इस परिवर्तन में अल्प महाप्राण ध्वनियाँ महाप्राण बन जाती है ;

यथा - ग्रह > घर (ग > घ)

हस्त > हाथ (त > थ)

घष्ट > ढीत (ट > ड)

१०. अल्पप्राणीकरण :

इस शब्द में महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण बन जाती है ;

यथा - भागिनी > बहिन (भ > ब)

सिन्धु > हिन्दु (घ > च)

११. अनुनासिकीकरण :

जब सामान्य मौखिक ध्वनियाँ कालान्तर में अनुनासिक रूप में प्रयुक्त होती हैं, तो उसे अनुनासिकीकरण कहते है ;

यथा - सर्प > साँप
सत्य > साँच
श्वास > साँस

१२. सन्धि :

कुछ शब्दों में मध्यगत व्यंजनों के लोप होने से कुछ स्वर संधि रूप में प्रयुक्त होते हैं ;

यथा - शत > सठ (अ और उ का संधिरूप)
नयन > नइन (अ और इन का संधिरूप)

५.४ स्वन परिवर्तन के कारण

स्वन परिवर्तन की दिशाओं के साथ - साथ ही हमें स्वन परिवर्तन के कारण से भी अवगत होते हैं । इनमें कुछ आंतरिक और कुछ बाह्य कारण होते हैं ।

५.४.१ आंतरिक कारण

क) अनुकरण की अपूर्णता :

भाषा समाज सापेक्ष होती है । अर्थात् भाषा व्यक्ति परिवार और समाज से प्राप्त की जाती हैं । भाषा को प्राप्त करने वाला व्यक्ति जन्म से कुछ दिनों बाद ही माँ, परिवार जनों एवं समाज के लोगों से संपर्कित होकर भाषा - ध्वनियों एवं रूपों को ग्रहण करने लगता है । इस ग्रहण की प्रक्रिया को ही अनुसरण कहते है । यह अनुकरण कभी भी शत प्रतिशत नहीं होता अर्थात अनुकरण अपूर्ण होता है । जिससे अनुकरणकर्ता की बोली में विकार या विकास हो जाता है । यह विकार अधिकतम स्वनों में होता है । हस्त में हाथ, मस्तक से माथा, अंगुलिका से ऊंगली जैसे हजारो शब्दों में यह ध्वनि विकार देखा जा सकता है ।

ख) प्रयत्नलाघव :

प्रयत्नलाघव मनुष्य के स्वभाव का अंग है । वह कठिन कार्यो से बचने का प्रयत्न करता हैं । इसीलिए वह भाषा में भी क्लिष्ट ध्वनियों की जगह सरल ध्वनियों को अपनाता है । सत्य से सच, कर्म से करम, मर्म से मरम, धर्म से धरम, चर्म से चरम आदि शब्दों का विकास इसी प्रवृत्ति का देन है । हिंदी की बोलियों में श, ष, घ वाणियों के स्थान में केवल स ध्वनि का पाया जाना भी प्रयत्न लाघव ही है ।

ग) अज्ञान :

भाषा का हस्तान्तरण, उच्चारण और श्रवण की प्रक्रिया है । व्यक्ति किसी शब्द को जिस रूप में सुनता है, उसे ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं करता । उसके अपने भाषिक संस्कार उसका रूप रंग बदल देते हैं । इसीलिए एक देहाती के लिए स्टेशन के लिए टेशन, सिगनल के लिए सिंगल, लैटर्न के लिए लालटेन, लांगक्लाथ के लिए लंकलाठ, कृष्माण्ड के लिए कोंहडा जैसे शब्द बन गए ।

घ) वाक्‌यंत्र की विभिन्नता :

किसी भी दो व्यक्तियों का वाक - यंत्र - ठीक एक ही प्रकार का नहीं होता, इसी कारण किसी भी एक ध्वनि का उच्चारण दो व्यक्ति ठीक एक तरह से नहीं कर सकते । एक से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में कुछ अंतर अवश्य पड़ेंगा । ये छोटे - छोटे अंतर कुछ दिनों में जब अधिक हो जाते हैं, तो स्पष्ट हो जाते हैं ।

च) भ्रामक या लौकिक व्युत्पत्ति :

भ्रामक व्युत्पत्ति का संबंध भी अशिक्षा से है, पर साथ ही इसमें दो मिलते - जुलते शब्दों का होना भी आवश्यक है । भ्रामक व्युत्पत्ति में होता है कि लोग किसी अपरिचित शब्द के संसर्ग में जब आते हैं और यदि मिलता - जुलता कोई शब्द उनकी भाषा में पहले से रहता है तो उसे परिचित शब्द के स्थान पर उस परिचित शब्द का उच्चारण करने लगे हैं और इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन हो जाता है ।

छ) बोलने में शीघ्रता :

बोलने में शीघ्रता के कारण भी परिवर्तन हो जाता है - जब ही, कब ही, अब ही तथा तब ही के जभी, कभी, अभी और तभी इसी के उदाहरण हैं ।

ज) भावुकता :

भावुकता के कारण भी शब्दों में पर्याप्त ध्वनि परिवर्तन देखा गया है । विशेषतः लोक प्रचलित व्यक्तिवाचक नाम तो अधिकांशतः इसी ध्वनि, परिवर्तन के परिणाम हैं । संबंधसूचक संज्ञाये 'अम्मा', 'चाची', 'बेटी', 'प्यारपूर्ण', भावुकता में ही 'अम्मी', 'चच्ची' या 'चचिया' तथा 'बिट्‌टो' या 'बिट्टी' आदि हो गयी है ।

झ) विभाषा का प्रभाव :

एक राष्ट्र जाति या संघ दूसरे के संपर्क में आता है तो विचार - विनिमय के साथ ध्वनि विनिमय भी होता है । एक - दूसरे की विशेष ध्वनियाँ एक - दूसरे को प्रभावित करती है । कुछ लोगों का विचार है कि भारोपीय भाषा में 'ट' वर्ग नहीं था । द्रविड़ों के प्रभाव से भारत में आने पर आर्यों के ध्वनि-समूह में उनका प्रवेश हो गया ।

५.४.२ बाह्य कारण :

क) भौगोलिक :-

कुछ लोगों के अनुसार यदि कोई जाति किसी स्थान से हटकर अधिक ठण्डे स्थान पर बस जाती है तो उनमें विवृत ध्वनियों का विकास नहीं होता और जो विवृत रहती है, उनकी भी संवृत की और झुकाव होने लगता है । गर्म देश में जाने पर ठीक इससे उल्टा स्वन परिवर्तन होता है ।

ख) सामाजिक और राजनैतिक :-

सामाजिक अवस्था के अनुसार भी ध्वनियों में परिवर्तन होता हैं । यदि किसी कमी के कारण अप्रसन्नता और दुःखपूर्ण वातावरण रहा तो सामान्यतः लोग धीरे से बोलते हैं । ऐसी दशा में भी संवृत की ओर झुकाव रहता है । इसी प्रकार यदि समाज में युद्ध का वातावरण रहा तो

बोलने की गति बढ़ जाती है । अधिकार शब्दों के कुछ ही भाग पर बल दिया जाता है । जिससे कुछ ध्वनियों का लोप संभव होता है । इसके विरूद्ध यदि समाज में सुख - शांति रही तो विद्धा का प्रचार रहेगा और इसके कारण लोग अधिक शुद्ध बोलने का प्रयास करेंगे । इसी स्थिति में सांस्कृतिक पुनरूत्थान भी होते है और इनका भी अपवाद स्वरूप कभी - कभी ध्वनि का प्रभाव पड़ता है ।

ग) ऐतिहासिक :-

विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियाँ ध्वनियों के विविध परिवर्तनों को प्रभावित करती हैं । ध्वनियाँ विभिन्न कालों में, विभिन्न परिस्थितियों जैसे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि के प्रभाव से बदलती रहती हैं । इस प्रकार एक भाषा जब अन्य भाषाओं के संपर्क में आती है तब उसकी ध्वनियों पर उन भाषाओं की ध्वनियों का प्रभाव पड़ता है फलस्वरूप उनमें परिवर्तन आ जाता है ।

५.५ हिंदी स्वरों और व्यंजनो का वर्गीकरण

हिंदी भाषा में मुख्यतः दो प्रकार का ध्वनियों की प्रमुखता है ।

१. स्वर और २. व्यंजन

५.५.१ स्वर :-

स्वर अन्य ध्वनियों को कहते हैं जो बिना किसी अन्य वर्ण की सहायता से उच्चारित किए जाते हैं । स्वतंत्र रूप से बोले जाने वाले वर्ण स्वर कहलाते हैं ।

"स्वर वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में वायु अबाध गति (बिना रूकावट) से मुख विवर से बाहर निकलती हैं।"

हिन्दी भाषा में मूल रूप से ग्यारह स्वर होते है ।

ग्यारह स्वर के वर्ण : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ आदि.

स्वरों का वर्गीकरण :-

स्वरों का वर्गीकरण मुख्य तीन आधारों पर किया जाता है -

(क) जिह्वा के भागों की दृष्टि से

(ख) जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से

(ग) ओठों की आकृति की दृष्टि से

(क) जिह्वा के भागों की दृष्टि से

१) स्वरों का प्रथम वर्गीकरण जिह्वा के भाग की दृष्टि से किया जाता है । इस दृष्टि के तीन वर्ग होते हैं :-

१. जिह्वा के अग्रभाग द्वारा निर्मित अग्रस्वर ।
जैसे (इ, ई, ए, ऐ)

२. जिह्वा के पश्चभाग द्वारा निर्मित पश्चस्वर ।
जैसे (ऊ, ऊ, ओ, औ, आ)

३. जिह्वा के मध्य भाग से निर्मित केन्द्रीयस्वर ।
जैसे - (अ)

(ख) जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से

यह वर्गीकरण स्वर-सीमा के भीतर जिह्वा की ऊँचाई की मात्रा पर किया जाता है । स्वरों को इस आधार पर मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जाता है । किन्तु इस दृष्टि से इससे भी अधिक भागों में स्वरों को विभाजित करने में कोई सैद्धांतिक रोक नहीं हैं । ब्लाक एवं ट्रैगर ने स्वरों को सात भागों में विभाजित किया है । इसको आगे एक तालिका में प्रदर्शित किया जाएगा । यहाँ पर स्वरों को केवल चार ही भागों में विभाजित करके उनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

१. संवृत २. अर्धसंवृत ३. अर्धविवृत ४. विवृत

१. संवृत - जब जिह्वा और स्वर सीमा के मध्य कम से कम स्थान खाली रहता है तब स्वरों को संवृत स्वर कहते हैं ।

(अग्र संवृत - ई, इ तथा पश्चसंवृत - ऊ, उ)

२. अर्धसंवृत - जब जिह्वा और स्वर सीमा के मध्य संवृत को अपेक्षा तनिक अधिक स्थान खाली रहता है तब स्वरों को अर्धसंवृत कहते है -

जैसे - (अग्र अर्धसंवृत - ए तथा पश्च अर्धसंवृत - ओ)

३. अर्धविवृत - जब जिह्वा और स्वर सीमा के मध्य विवृत की अपेक्षा तनिक कम स्थान खाली रहता है तब स्वरों को अर्धविवृत कहते है -

जैसे - (अग्र अर्धविवृत - ऐ तथा पश्च अर्धविवृत - औ)

४. विवृत - जब जिह्वा तथा स्वर-सीमा के मध्य अधिक से अधिक स्थान खाली रहता है तब स्वरों को विवृत कहते है -

जैसे - (पश्च विवृत - आ, अग्र विवृत का हिंदी में अभाव है)

(ग) ओठों की आकृति की दृष्टि से

स्वरों के दो वर्ग किए जाते हैं । स्वरों के उच्चारण में जब ओंठ गोलाकार हो तब स्वरों को वृताकार कहा जाता है । इसके विपरीत जब ओंठ गोलाकार न हो तब उन्हें अवृताकार कहा जाता है । किसी भी स्वर को वृताकार या अवृताकार करके बोला जा सकता है ।

जिह्वा के अग्रभाग के आधार पर
अर्धसंवृत अग्रस्वर - 'ए'
अर्थ विवृत अग्रस्वर - 'ऐ'

जिह्वा के पश्चभाग के आधार पर
अर्धसंवृत अग्रस्वर - 'ओ'

अर्थ विवृत अग्रस्वर - 'औ'

इसके अतिरिक्त स्वरों के वर्गीकरण में निम्नलिखित शारीरिक अंगों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहता हैं ।

अनुनासिकता या कोमल तालु की स्थिति :-

कोमल तालु और कौवा के विषय में उल्लेख किया गया है कि ये दोनों नासिका विवर को कभी पूर्णतया बन्द कर देते हैं और कभी मध्य में रहते हैं, जिससे वायु मुख और नासिका दोनों मार्गों से निकलती है । इसके आधार पर सभी स्वरों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं ।

(क) अनुनासिक :-

जब वायु मुख और नासा दोनों मार्ग से निकलेगी तो वे ध्वनियाँ अनुनासिक हो जायेंगी ।
जैसे :- अँ, ऑ, इँ, ई आदि.

(ख) निरनुसासिक :-

जिनमें नासारंध्र की सहायता नहीं है ।
जैसे :- मौलिक स्वर -, अ, आ, इ, ई.

मूर्धन्यता :-

अग्रस्वर, मध्यस्वर और पश्चस्वर के उच्चारण में जिह्वा के अग्र, मध्य और पश्च भाग कार्य करते हैं । उस स्थिति में सामान्यतः जिह्वानोक, निश्चेष्ट रहता हैं और वह नीचे दाँतों के पीछे पड़ा रहता है । जिह्वानोक की विशेषता यह है कि वह किसी भी स्थिति में तालु या मूर्धा की ओर मुड सकता है । ऐसी स्थिति में जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उन्हें मुर्धन्य कहते हैं ।

इसके लिए स्वर के नीचे एक बिंदू लगा दिया जाता है । स्वर ध्वनियों को दो भागों में बाँटा गया है ।

मूर्धन्यकृत और अमूर्धन्यकृत :-

"मूर्धन्यकृत ध्वनियाँ अमेरिकी अंग्रेजी भाषा में प्राप्त होती है ।"

तनाव और दृढता की स्थिति :-

मुख की माँसपेशियों तथा अन्य अवयवों में कभी तनाव की स्थिति होती है, कभी शिथिलता की । तनाव व दृढ़ता की स्थिति को दृढ़ और तनावहीनता को शिथिल कहते हैं । इस दृष्टि से भी स्वरों के दो भेद किए जा सकते हैं ।

शिथिल स्वर - अ, इ, उ आदि
दृढ़ स्वर - आ, ई, ऊ आदि

घोष और अघोष स्वरतंत्रियों की स्थिति :-

स्वर तंत्रियों की स्थितियों में उल्लेख किया गया है कि स्वरतंत्रियाँ एक रूप में नहीं रहती हैं । वे कभी खुली रहती है । उस अवस्था में अन्दर से आनेवाली वायु बिना किसी घर्षण

या कंपन के बाहर निकलती है । ऐसी ध्वनियों को अघोष या श्वास ध्वनियाँ कहते हैं । कभी स्वरतंत्रियों का मुख बन्द रहता है, अन्दर आनेवाली वायु घर्षण के साथ छोटा छिद्र बनाकर निकलती है, इन ध्वनि को घोष या नाद ध्वनि कहा जाता है । इस प्रकार सभी स्वर घोष या अघोष दो भागों में विभक्त हो सकते हैं ।

मात्रा :-

ध्वनि के उच्चारण में लगनेवाली अवधि को 'मात्रा' कहते हैं । मात्रा के आधार पर स्वरों का स्वरूप निश्चित किया जाता है । इसके तीन प्रकार है ।

ह्रस्व । लघु ।
दीर्घ । गुरू ऽ
प्लुत ऽ।

मूल स्वर एवं संयुक्त स्वर :-

एक स्थान या अनेक स्थान से उच्चारण की दृष्टि से स्वरों को दो भागों में बाँटा गया है।

(क) मूल स्वर

इनके उच्चारण में भी जीभ किसी एक स्थान पर रहती है ।
जैसे -
अ, आ, इ, ई आदि
इन्हें मूलस्वर कहते हैं ।

(ख) संयुक्त स्वर

इनके उच्चारण में जीभ एक स्वर के उच्चारण से दूसरे उच्चारण स्थान की ओर जाती है ।
जैसे -
ऐ, औ, का, अइ, और
ऐ + औ = अइ
इन्हें संयुक्त या मिश्र स्वर कहते हैं ।

५.५.२ व्यंजन

वे वर्ण जिनका उच्चारण बिना स्वर की सहायता के बिना सम्भव नहीं है अर्थात इनको स्वर की सहायता से बोला जाता है, व्यंजन कहलाता है ।

व्यंजनों का वर्गीकरण :-

व्यंजनों का वर्गीकरण निम्नलिखित भागों में किया गया है ।

१. मूल विभाजन या अभ्यांतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के प्रकार
२ प्राण वायु के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण
३. स्वर तंत्रियों के कंपन /घोष के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण
४. उच्चारण के आधार पर व्यंजनों के प्रकार

१. मूल विभाजन या अभ्यांतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के प्रकार

यह विभाजन सर्वप्रथम एवं सबसे प्राचीन है । मूल विभाजन के आधार पर व्यंजनों को ४ भागों में बाँटा गया है ।

(क) <u>स्पर्श व्यंजन / उदित व्यंजन / वर्गीय व्यंजन :-</u>

वे व्यंजन जिनका उच्चारण करने पर जीभ मूल उच्चारण स्थानों (कंठ, ताल, मूर्धा, दंत, ओष्ठ) को स्पर्श करती है इसलिए ये स्पर्श व्यंजन कहलाते हैं ।

यह व्यंजनों के शुरू के ५ वर्ग होते हैं इसीलिए इन्हें वर्गीय व्यंजन भी कहा जाता है । ये व्यंजन जीभ के अलग-अलग उच्चारण स्थानों के टकराने से उत्पन्न हुए हैं, इसीलिए इन्हें उदित व्यंजन भी कहा गया है ।

इनकी संख्या २५ है ।

वर्ग	**व्यंजन**
क वर्ग	क, ख, ग, घ, ड
च वर्ग	च, छ, ज, झ, ञ
ट वर्ग	ट, ठ, ड, ढ, ण
त वर्ग	त, ध, द, ध, न
प वर्ग	प, फ, ब, भ, म

(ख) <u>अन्तस्थ : व्यंजन</u> :-

अंत का अर्थ होता है - भीतर या अंदर

जिन व्यंजनों का उच्चारण करते समय जीभ मुँह के किसी भी भाग को पूरी तरह स्पर्श नहीं करती अर्थात इनका उच्चारण मुँह के भीतर से होता है, अंतःस्थ व्यंजन कहलाते है ।

इनकी संख्या ४ है - य, र, ल, व

(ग) <u>उष्म व्यंजन</u> :-

उष्मा का अर्थ है - गर्मी या गर्माहट

जिन व्यंजनों का उच्चारण करते समय गर्मी उत्पन्न हो अर्थात इनके उच्चारण में मुख से हवा के रगड़ खाने के कारण उष्मा पैदा हो, उष्म व्यंजन कहलाते हैं ।

इनकी संख्या चार (४) है - श, ष, स, ह

(घ) <u>संयुक्त</u> <u>व्यंजन</u> :-

जो व्यंजन दो व्यंजनों के मेल से बनते है, संयुक्त व्यंजन कहलाते हैं ।

इनकी संख्या चार (४) है - क्ष, त्र, ज्ञ, श्र

क्ष = क् + ष = क्षमा, रक्षा, कक्षा

त्र = त् + र = पत्र, त्रिशूल

ज्ञ = ज् + ञ = ज्ञान, विज्ञान

श्र = श् + र = श्रवण, श्रम

२. <u>प्राण वायु के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण</u> :-

व्यंजनों को प्राण वायु के आधार पर भी बांटा गया है । इसके अनुसार व्यंजन दो प्रकार के होते हैं ।

(क) <u>महाप्राण</u> :-

जिन व्यंजनों का उच्चारण करते समय प्राण वायु अधिक निकले या अधिक प्रयोग हो, महाप्राण कहलाते हैं ।

इनकी संख्या १४ है ।

५ वर्गों के सम स्थान वाले वर्ण (१०) + उष्म व्यंजन (४)

अर्थात - ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, ध, फ, भ, श, ष, स, ह

सभी उष्म व्यंजन और वर्ग के दूसरे चौथे स्थान के वर्ण ही महाप्राण वर्ण हैं ।

(ख) <u>अल्पप्राण</u> :-

जिन व्यंजनों का उच्चारण करते समय प्राण महाप्राण की तुलना में कम निकले या कम प्रयोग हो, अल्पप्राण कहलाते हैं ।

इनकी संख्या १९ है ।

५ वर्गों के विषम स्थान वाले वर्ण (१५) + अंतःस्थ व्यंजन (४)

अर्थात - क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व

सभी अंतःस्थ व्यंजन और वर्ग के पहले तीसरे, पाँचवे स्थान के वर्ण ही अल्पप्राण वर्ण हैं ।

३. <u>स्वर तंत्रियों के कंपन /घोष के आधार पर व्यंजनों के प्रकार</u> :-

घोष के आधार पर व्यंजनों के प्रकार स्वर तंत्रियों के कंपन के आधार पर व्यंजनों को दो भागों में बांटा गया है ।

(क) <u>घोष या सघोष व्यंजन</u> :-

इन व्यंजनों का उच्चारण करते समय स्वर तंत्रियों में अधिक कंपन हो, घोष या सघोष वर्ण कहलाते हैं ।

इनकी संख्या २० है ।

वर्गों के ३, ४, ५ वर्ण (१५) + अंतःस्थ व्यंजन (४) + ह

ख, ग, ङ्, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, य, र, ल, व, ह

सभी अंतःस्थ व्यंजन, ह वर्ण और वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवे वर्ण घोष वर्ण के अंतर्गत आते हैं ।

(ख) <u>अघोष व्यंजन</u> :-

इन व्यंजनों का उच्चारण करते समय स्वर तंत्रियों में घोष वर्णों की तुलना में कम कंपन होता है, अघोष वर्ण कहलाते हैं ।

इनकी संख्या १४ है ।

वर्गों के १, २ वर्ण (१०) + श, ष, स

क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, ष, श, स

श, ष, स वर्ण और वर्गों के पहले, दूसरे वर्ण अघोष वर्ण के अंतर्गत आते हैं ।

कुछ व्यंजन एवं उनके अन्य नाम ।

१) स्पर्श संघर्षी व्यंजन - च, छ, ज, झ
२) संघर्षी व्यंजन - फ, व, स, श, ह
३) नासिक्य व्यंजन - ङ, न, ण, म, ञ
४) निरानुनासिक व्यंजन - च, क, ट, थ
५) लुंठित या प्रकम्पित व्यंजन - र
६) पाश्चिक व्यंजन - ल
७) स्वर यंत्र मुखी या काकल्य व्यंजन - र
८) अर्ध स्वर - य, व
९) द्विगुण व्यंजन / उक्षिप्त व्यंजन - ढ़, ड़

५.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने स्वन परिवर्तन की दिशाएँ, स्वन परिवर्तन के कारण और हिंदी स्वर और व्यंजन का वर्गीकरण आदि का अध्ययन किया।

५.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) ध्वनि के उच्चारण में लगनेवाली अवधि को क्या कहते हैं?
२) 'मात्रा' के प्रकार कितने है?
३) हिंदी भाषा में मुल रूप से कितने स्वर है?
४) स्वरों का वर्गीकरण कितने भागों में किया जाता है?

५.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) स्वन परिवर्तन की दिशाएँ और उसके कारणों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
२) हिंदी स्वरों और व्यंजनों को स्पष्ट कीजिए।

५.९ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
२) भाषा विज्ञान - रमेश शुक्ल
३) हिंदी भाषा, व्याकरण और रचना - डॉ. अर्जुन तिवारी
४) हिंदी वर्तनी का विकास - अनिता गुप्ता
५) हिंदी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु

❖❖❖❖

इकाई-६

हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा :

६.१ इकाई का उद्देश्य

६.२ प्रस्तावना

६.३ प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ - वैदिक तथा लौकिक संस्कृत और उसकी विशेषताएँ

६.४ मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ - पालि, प्राकृत, शौरसेनी, अर्धमागधी, अपभ्रंश और उनकी विशेषताएँ

६.५ आधुनिक भारतीय भाषाओं का सामान्य परिचय - मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, तेलगु, कन्नड, तमिल, मलयालम

६.६ सारांश

६.७ लघुत्तरीय प्रश्न

६.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

६.९ संदर्भ ग्रंथ

६.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा।

i) प्राचीन भारतीय भाषाओं का रूप और व्यवहार स्पष्ट होगा।

ii) वैदिक और लौकिक संस्कृत का अंतर स्पष्ट होगा।

iii) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

iv) आधुनिक भारतीय भाषाओं की जानकारी प्राप्त होगी।

v) आधुनिक भारतीय भाषाओं के क्षेत्र, उपयोग से परिचय होगा।

६.२ प्रस्तावना

'भाषा' शब्द संस्कृत 'भाष' धातु से निष्पन्न है - जिसका अर्थ है 'भाष् व्यक्तायां वाचि' अर्थात् व्यक्त वाणी। 'भाष्यते व्यक्तवाग् रुपेण अभिव्यज्यते इति भाषा' अर्थात भाषा उसे कहते है जो व्यक्त वाणी के रूप में अभिव्यक्ति की जाती है।

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है, मानव की वाणी भाषा है।

प्रतिकों की वह व्यवस्था जिसे मुख द्वारा उच्चरित किया जाता है और कानों द्वारा सुना जाता है वह भाषा कहलाती है। इस प्रकार की अनेकों परिभाषाओं से हमारा परिचय पहले भी हो चुका है।

वर्तमान समय में बोली जाने वाली भाषाएँ अनेकों वर्षों की लगातार होने वाली परिवर्तनों, विभिन्न भाषाओं का आपस में समावेषण और उन्मूलन से बनी है। अर्थात आज की बोली जाने वाली भाषाओं का एक लंबा इतिहास रहा है जो बहुत ही दिलचस्प है। भाषाओं का इतिहास १०,००० वर्ष से भी पुराना है। जैसे जैसे मानव जीवन का विकासक्रम जंगल, गुफाओं से कृषि और सामाजिक संस्थाओं के निर्माण की ओर अग्रसर होता गया, वैसे-वैसे भाषाओं का विकास और परिवर्तन भी होता गया।

६.३ प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ

भारत सिर्फ एक देश नहीं बल्कि एक ऐसा विशाल भू-भाग और महाद्वीप के समान है जहाँ का भाषीय इतिहास काफी समृद्ध और संपन्न रहा है। भारत भाषा और बोलियों की दृष्टि से विश्व का सर्वाधिक समृद्ध कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। विश्व का कोई भी देश ऐसा नहीं जो भाषाओं के मामले में इतना समृद्ध रहा है।

कुछ विद्वानों ने गणना करके विश्व की सभी भाषाओं की संख्या २७९६ बताई है। किन्तु कुछ विद्वान अनुमानतः इसकी संख्या ३००० बताते हैं।

भारत में (२००१ की जनगणना के अनुसार) १२२ मुख्य भाषाएँ और १५९९ बोलियों की संगणना की गई है, जो कि एक सुखद आश्चर्य है ।

डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार भारत में १७९ समृद्ध और विकसित भाषाएँ है तथा ५४४ बोलियाँ प्रचलित हैं । इन सभी बोलियों और भाषाओं को सुविधा की दृष्टि से मुख्य दो वर्गों में विभाजित करके देखा जा सकता है ।

१. आर्य भाषाएँ

२. आर्येतर भाषाएँ

क्र.	भौगोलिक क्षेत्र	भाषा - परिवार
(क)	युरेशिया (युरोप - एशिया)	१) भारोपीय (भारत - युरोपीय) २) द्राविड़ परिवार ३) काकेशी परिवार ४) बुरूशस्की परिवार ५) उराल अल्ताई परिवार ६) चीनी परिवार ७) जापानी - कोरियाई परिवार ८) अत्युत्तरी परिवार

		९) बास्क परिवार १०) सामी हामी परिवार
(ख)	अफ्रीका भूखण्ड	१) सुदानी परिवार २) बान्तू परिवार ३) होंततोत - बुशमैनी परिवार
(ग)	प्रशान्त महासागीरी भूखण्ड	१) मलय - पोलिनेशियाई परिवार २) पापुई परिवार ३) ऑस्ट्रेलियन परिवार ४) दक्षिण पूर्व एशियाई परिवार
(घ)	अमेरिका भूखण्ड	१) अमेरिकी परिवार

१. आर्य भाषाएँ :-

आर्य भाषाएँ भारोपीय परिवार की भाषाएँ हैं । आर्य भाषाओं के अध्ययन हेतू इसके तीन भाग किए जा सकते हैं ।

१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ
२) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ
३) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

भारत में प्राचीन - आर्य - भाषा समूह को काल क्रम की दृष्टि से निम्न वर्गों में बाँटा गया है ।

अ) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ - २००० ई. पू. से - ५०० ई. पू. तक
१) वैदिक संस्कृत - २००० ई. पू. - ८०० ई. पू. से तक
२) लौकिक संस्कृत - ८०० ई. पू. - ५०० ई. पू. से तक

ब) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ - ५०० ई. पू. - १००० ईसा तक
१) प्रथम प्राकृत (पालि, अभिलेखी) - ५०० ईसा. पूर्व से १ ई. सन्
२) द्वितीय प्राकृत (प्राकृत) - १ ई. सन् से ५०० ईस्वी तक
३) तृतीय प्राकृत (अपभ्रंश) - ईस्वी ५०० से ईस्वी १०००

स) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ - ई. सन् १००० से अब तक

सिन्धी	लहँदा	पंजाबी	राजस्थानी
गुजराती	पश्चिमी हिन्दी	उडिया	बंगला
मराठी	पूर्वी हिन्दी	असमिया	कच्छी
भोजपुरी	पहाड़ी	जयपुरी इत्यादि ।	

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ -

१) वैदिक संस्कृत - २००० ई.पू - ८०० ई.पू.

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का प्राचीनतम नमूना वैदिक - साहित्य में दिखाई देता है । वैदिक सभ्यता का सृजन वैदिक संस्कृत में हुआ है । वैदिक संस्कृत को वैदिकी, वैदिक, छन्दस, छान्दस आदि भी कहा जाता है । प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का स्वरूप ऋग्वेद में उपलब्ध होता है । यद्पति ऋग्वेद का समय अनिश्चित है; तथापि १५०० ई.पू. के आस-पास उसकी रचना हो गई होगी ।

'ऋक' का शाब्दिक अर्थ है - स्तुति करना । वैदिक ऋषियों द्वारा देवताओं की प्रशंसा में रचित ऋचाओं का संग्रह 'ऋग्वेद' कहलाया । ऋग्वेद में १० मण्डल, १०२८ सूक्त तथा १०५८० ऋचाऐं हैं । इसके सूक्त प्रायः यज्ञों के अवसरों पर पढ़ने के लिए देवताओं की स्तुतियों से सम्बन्ध रखने वाले गीतात्मक काव्य हैं ।

वैदिक साहित्य को तीन भाग में बाँटा गया है :-

१) संहिता
२) ब्राह्मण एवं
३) उपनिषद

१) सर्वप्रथम 'संहिता' की रचना हुई जिसे 'ऋग्वेद संहिता' भी कहा जाता है । संहिता - विभाग में 'ऋक् संहिता' 'यजुः संहिता' 'साम संहिता' एवं 'अथर्व संहिता' आते हैं । महत्त्व की दृष्टि से प्रधान 'ऋक संहिता' है । 'यजुः संहिता' में यज्ञों के कर्मकाण्ड में प्रयुक्त मन्त्र, पद्म एवं गद्य दोनों रूपों में संग्रहीत हैं । 'यजुः संहिता' कृष्ण एवं शुक्ल इन दो रूपों में सुरक्षित है ।

'कृष्ण यजुर्वेद' संहिता में मंत्र भाग एवं गद्यात्मक व्याख्यात्मक भाग साथ-साथ संकलित किए गए हैं । परन्तु शुक्ल यजुर्वेद संहिता में केवल मन्त्र भाग संग्रहीत हैं ।

'सामवेद' में सोम मार्गों में वीणा के साथ गाए जानेवाले सूक्तों को गेय पदों के रूप में सजाया गया है । 'सामवेद' में सोम केवल ७५ मन्त्र ही मौलिक हैं । शेष ऋग्वेद से लिए गए हैं। 'अथर्ववेद संहिता' जन साधारण में प्रचलित मन्त्र-तन्त्र; टोने–टोटके का संकलन है ।

प्राचीन आर्यों की अपनी बोलचाल की भाषा भी रही होगी किन्तु सूक्तों और ऋचाओं की भाषा साहित्यिक है । तत्कालीन बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में अंतर अवश्य रहा होगा, परंतु उस समय के आर्यो के बोलचाल की भाषा के नमूने नहीं मिलते । सँभावना की जाती है कि उस समय की बोलचाल की भाषा की कुछ बानगी ऋग्वेद की साहित्यिक भाषा में आ गई हो ।

२) ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट या अन्तिम भाग उपनिषदों के नाम से प्रसिद्ध हुए । इनमें वैदिक मनीषियों के आध्यात्मिक एवं पारमार्थिक चिन्तन के दर्शन होते हैं ।

३) उपनिषदों की संख्या १०८ बताई गई हैं किन्तु १२ उपनिषद ही मुख्य हैं :-

१) ईश
२) केन
३) कठ
४) प्रश्न
५) वृहदारण्यक
६) ऐतरेय
७) छा-दोग्य
८) तैतरीय
९) मुण्डक
१०) माण्डूक्य
११) कौषीतकी
१२) श्वेताश्वेतर उपनिषद

ऋषियों द्वारा निर्मित सूक्त दीर्घकाल तक श्रुति-परम्परा में ऋषि - परिवारों में सुरक्षित रखे जाते रहे । परन्तु शनैः - शनैः बोलचाल की भाषा से सूक्तों की भाषा (साहित्यिक भाषा) की भिन्नता बढ़ती गई । सूक्तों के प्राचीन रूप को सुरक्षित रखने के लिए संहिता के प्रत्येक पद को सन्धि रहित अवस्था में अलग-अलग कर 'पद-पाठ' बनाया गया तथा पद पाठ से संहिता पाठ बनाने के नियम निर्दिष्ट किए गए और इस प्रकार वेद की विभिन्न शाखाओं के 'प्रतिशाखाओं' की रचना हुई । वेद की ११३० शाखाएँ मानी गई है । किन्तु वर्तमान में छह प्रतिशाख्य ग्रन्थ ही उपलब्ध है ।

१) शौनक कृत ऋक-प्रतिशाखा
२) कात्यायन कृत शुक्ल - यजुः प्रतिशाख्य
३) तैतिरीय संहिता का तैतरीय प्रतिशाख्य
४) मैत्रायणी - संहिता का मैत्रायणी - प्रतिशाख्य (कृष्ण यजुर्वेद के प्रतिशाख्य)
५) सामवेद का पुष्प-सूत्र
६) अथर्ववेद का शौनक कृतं अथर्व प्रतिशाख्य

इन प्रतिशाख्यों में अपनी-अपनी शाखा से सम्बंधित वर्ण, विचार, उच्चारण, पद-पाठ आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । ये ग्रन्थ वैदिक काल के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक ध्वनि विज्ञान के ग्रन्थ हैं ।

वैदिक संस्कृत ध्वनियाँ :-

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. उदय नारायण तिवारी, डॉ. कपिल देव द्विवेदी जैसे विद्वानों ने वैदिक ध्वनियों की संख्या ५२ मानी है, जिनमें १३ स्वर तथा ३१ व्यंजन है । डॉ. हरदेव बाहरी ने वैदिक स्वरों की संख्या १४ मानी है । वैदिक ध्वनियों का वर्गीकरण निम्न ढंग से किया जा सकता है :-

वैदिक स्वर - (संख्या १३)

मूल स्वर - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ

संयुक्त स्वर - ए, ओ, ऐ, औ

वैदिक व्यंजन - (संख्या ३१)

स्थान	अघोष		घोष			अघोष	अर्धस्वर
	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	उष्म /महाप्राण	अन्तस्थ
कण्ठ	क	ख	ग	घ	ङ		
तालण्य	च	छ	ज	झ	ञ	श	य
मूर्धन्य	ट	ठ	ड, ळ	ढ, ळह्	ण	ष	र
दन्त्य	त	थ	द	ध	न	स	ल
ओष्ठ	प	फ	ब	भ	म		व
				ह	(ं) अनुस्वार	(:) विसर्ग जिव्हामूलीय उपध्मानीय	

वैदिक संस्कृत की विशेषताएँ :-

१) वैदिक संस्कृत श्लिष्ट योगात्मक है ।

२) वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक एवं बलात्मक दोनों ही स्वाराघात मौजूद है ।

३) वैदिक संस्कृत में तीन लिंग (पुलिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसक लिंग) तीन वचन (एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन) तीन वाच्य (कर्तुवाच्य, कर्मवाच्य एवं भाववाच्य) एवं आठ विभक्तियों (कर्ता, सम्बोधन, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण) का प्रयोग मिलता है ।

४) वैदिक संस्कृत में धातुओं के रूप आत्मने एवं परस्मै दो पदों में चलते थे । कुछ एक धातुएँ उभयपदी थीं ।

५) डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार वैदिक संस्कृत में केवल तत्पुरूष, कर्मधारय, बहुब्रीहि एवं द्वन्द्व ये चार ही समास मिलते हैं ।

६) वैदिक संस्कृत में काल एवं भाव (क्रियाएं) मिलाकर क्रिया के १० प्रकार के रूपों का प्रयोग मिलता है ।

चार काल : १) लट् (वर्तमान) २) लिट् (परोक्ष या सम्पन्न)

३) लङ् (अवद्यतन या सम्पन्न) ४) लुङ (सामान्य भूत)

छह भाव : १) लोट् (आज्ञा) २) विधि लिङ् सम्भावनार्थ
३) आर्शीलिङ् (इच्छार्थे) ४) लृङ् (हेतु हेतु समुद्भाव या निर्देश)
५) लेट (अभिप्राय) और ६) लेङ् (निर्बन्ध) ।

क्रिया के १० काल और भाव भेद को ही लकार कहते है ।

७) मूल भारोपीय के ह्रस्व मूल स्वर अ, एँ, ओं वैदिक संस्कृत में 'अ' हो गए हैं ।

८) मूल भारोपीय भाषा तीनों मूल दीर्घ स्वर आ, ए, ओ वैदिक संस्कृत में 'आ' हो गए हैं ।

९) मूल भारोपीय अंतस्थ न्, म, का वैदिक संस्कृत में लोप हो गया है ।

१०) मूल भारोपीय भाषाओं तीन प्रकार का 'क' वर्ग है - वैदिक संस्कृत में केवल एक प्रकार है।

११) वैदिक संस्कृत में 'च' वर्ग और 'ट' वर्ग नवीन ध्वनियाँ हैं ।

१२) वैदिक संस्कृत में 'लृ' स्वर का प्रयोग प्रचलित था ।

१३) वैदिक संस्कृत में मध्य स्वरागम / स्वरभक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं ।

१४) वैदिक संस्कृत में उपसर्ग धातु से भी पृथक प्रयुक्त होते थे ।

१५) वैदिक संस्कृत में संधि नियमों में पर्याप्त शिथिलता थी ।

१६) वैदिक संस्कृत में ह्रस्व और दीर्घ के साथ प्लुत का भी प्रयोग प्रचलित था ।

१७) दो स्वरों के मध्य में ड > ळ और ढ > लृड्ड हो जाता था ईडे > ईळे, भौढुषे > मीलह्रुषे । संस्कृत में ये दोनों ध्वनियाँ नहीं हैं । हिंदी में ळ, ळह् में विकसित रूप ड़, ढ़ हैं।

१८) धातु रूपों में लट् लकार का प्रयोग होता था, वह लौकिक संस्कृत में नहीं रहा ।

२) लौकिक संस्कृत ८०० ई. पू. ५०० ई. पू.

प्राचीन - भारतीय - आर्य - भाषा का वह रूप जिसका पाणिनि की 'अष्टध्यायी' में विवेचन किया गया है । लौकिक संस्कृत को संस्कृत, क्लैसिकल संस्कृत इत्यादि नामों से भी जाना जाता है । भाषा के अर्थ में संस्कृत (संस्कार की गई) शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है । वैदिक काल में भाषा के तीन भौगोलिक रूप (उतरी, मध्यदेशी, पूर्वी) प्रचलित थे । लौकिक संस्कृत का मूलाधार उत्तर में बोली जानेवाली बोलचाल का रूप ही माना जा सकता है । तत्कालीन समय में वही प्रमाणिक भाषा थी । उतरी भाषा में आर्य - भाषा - भाषियों में कई भौगोलिक बोलियाँ जन्म ले चुकी थी, जो आगे चलकर विभिन्न प्राकृतों, अपभ्रंशो एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के जन्म का कारण बनी ।

डॉ. हार्नले, डॉ. ग्रियर्सन तथा थेबर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत को बोलचाल की भाषा नहीं माना । किन्तु डॉ. भांडारकर, डॉ. गुणे ने उनके मत का खंडन कर अनेक तर्क देकर इसे बोलचाल की भाषा सिद्ध किया है ।

संस्कृत साहित्य का प्रयोग महाभारत - रामायण से लेकर शाहजहाँ के काल तक हुआ है । भारत की सभी भाषाओं ने इससे अगणित शब्द लिए है साथ ही आस-पास की तिब्बती,

अफगानिस्तानी, चीनी, जापानी, कोरियाई और पुर्वी द्वीप समूहों की भाषाएँ तथा अरबी इत्यादि ने भी संस्कृत से शब्द ग्रहण किए है । भारत की भाषाओं के लिए यह अब भी कामधेनु है । इसने अनेक भाषाओं को अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया है । यह भाषा (उत्तर, मध्यप्रदेश तथा पूर्व) तीनों भागों के लोगों में शिष्ट भाषा, साहित्यिक या राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी ।

लौकिक संस्कृत की विशेषताएँ :-

१) लौकिक संस्कृत में उपसर्गो का स्वतंत्र प्रयोग नहीं रहा ।

२) संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलात्मक स्वर का प्रयोग होने लगा ।

३) लौकिक संस्कृत के व्यंजनों में ळ, ळह् नहीं रहे ।

४) लौकिक संस्कृत में शब्द रूपों और धातु रूपों में वैकल्पिक रूपों की न्यूनता हो गई ।

५) संधि नियमों की अनिवार्यता हो गई ।

६) लट् आकार का अभाव हो गया ।

७) भाषा में स्वरों का प्रयोग समाप्त हो गया ।

८) वैदिक संस्कृत में ५२ ध्वनियाँ थी, उनमें से चार ध्वनियाँ लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गई और ४८ ध्वनियाँ शेष रहीं ।

९) लौकिक संस्कृत में कृ, प् धातु में ही मिलता है ।

१०) लौकिक संस्कृत में अनुस्वार के दो रूप हो गए - अनुस्वार - अनुनासिक ।

११) लौकिक संस्कृत में स्वरों का प्रयोग समाप्त हो गया ।

१२) कृ प्रत्ययों आदि में अनेक प्रत्ययों के स्थान पर एक प्रत्यय रहा । पंद्रह प्रत्ययों के स्थान पर केवल तुम प्रत्यय है ।

६.४ मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ : ५०० ई. पू. - १००० ई. तक

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा को साधारणतया संस्कृत कह दिया जाता है, उसी प्रकार भारतीय आर्यभाषा के ५०० ई. पू. से १००० ई. तक प्रचलित मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के लिए प्राकृत शब्द का प्रयोग किया जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के १५०० वर्षों तक प्रचलित स्वरूप के सम्यक् विवेचन के लिए उसे तीन काल में बाँटा जा सकता है ।

१. प्रथम प्राकृत या पालि (५०० ई. पू. - १ ई.)
२. द्वितीय प्राकृत या साहित्यिक प्राकृत (१ ई. - ५०० ई.)
३. तृतीय प्राकृत या अपभ्रंश (५०० ई. - १००० ई.) तक

१. प्रथम प्राकृत या पालि (५०० ई. पू. - १ ई.)

'पालि' का अर्थ 'बुध्द वचन' (पा रक्खतीति बुद्ध वचनं इति पालि) होने से यह शब्द केवल मूल त्रिपिटक ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त हुआ । मध्यकालीन भारतीय भाषाओं की महत्त्वपूर्ण

भाषा 'पालि' है । इसका उदय वैदिक और लौकिक संस्कृत की प्रतिक्रिया में हुआ था । बुद्ध ने अपना उपदेश इसी भाषा में दिया । इसकी वजह से 'पालि' शब्द भाषा के लिए प्रयुक्त किया गया है । 'पालि' शब्द का उल्लेख चौथी शताब्दी में लंका में लिखित ग्रंथ 'दीप बंस' में आचार्य बुद्घोष के द्वारा किया गया है । भाषा के रूप में 'मागधी' या मागध भाषा का व्यवहार होता था । भाषा के अर्थ में पालि का प्रयोग अत्याधुनिक है और पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा हुआ है । पालि शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद है ।

विद्वान	**व्युत्पत्ति**
आचार्य विघुशेखर	पन्ति > पति > पट्टि > पल्लि > पालि
मैक्स वालेसर	पाटलि पुत्र या पाडलि
भिक्षु जगदीश कश्यप	परियाय > पलियाय > पालियाय > पालि
भण्डारकर व वाकर नागल	प्राकृत > पाकट > पाअड > पाउल > पालि
भिक्षु सिद्धार्थ	पाठ > पाळ > पाळि > पालि
कोसाम्बी	पाल् > पालि
उदयनारायण तिवारी	पा > णिञ् > लि = पालि

व्युत्पत्ति की तरह ही पालि भाषा के प्रदेश को लेकर भी विद्वानों में काफी मतभेद है । विभिन्न विद्वानों द्वारा वर्णित पालि भाषा का प्रदेश निम्नांकित है -

विद्वान	**पालि भाषा प्रदेश**
श्रीलंकाई बौद्ध तथा चाइल्डर्स	मगध
वेस्टरगार्ड तथा स्टेनकोनो	उज्जयिनी या विन्ध्य प्रदेश
ग्रियर्सन व राहुल	मगध
ओलडेन वर्ग	कलिंग
रीज़ डेविड्ण	कोसल
सुनीति कुमार चटर्जी	मध्यप्रदेश की बोली
देवेन्द्रनाथ शर्मा	मथुरा के आसपास का भूभाग
उदयनारायण तिवारी	मध्यप्रदेश की बोली

सर्वसम्मति से विद्वानों ने पालि भाषा का प्रदेश, मध्य प्रदेश की बोली को स्वीकार किया है ।

पालि की वर्ण संघटना या ध्वनियाँ :-

पालि के प्रसिद्ध वैयाकरण कच्चायन के अनुसार पालि में ४१ ध्वनियाँ होती है तथा मोगलान के अनुसार पालि में कुल ४३ ध्वनियाँ होती हैं ।

★ कच्चायन के अनुसार पालि में ८ स्वर तथा ३३ व्यंजन होते है तथा मोगलान के अनुसार १० स्वर तथा ३३ व्यंजन होते हैं ।

पालि में वर्णों का वर्गीकरण निम्न ढंग से किया जा सकता है :-

स्वर :-

ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ओं
दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ओ

व्यंजन :-

क वर्ग - क, ख, ग, घ, ङ
च वर्ग - च, छ, ज, झ, ञ
ट वर्ग - ट, ठ, ड, ढ, ण
त वर्ग - त, थ, द, ध, न
प वर्ग - प, फ, ब, भ, म
य, र, ल, व, स, ह, ळ, अं

पालि भाषा की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ :-

१. अनुस्वार (अं) - पालि में स्वतंत्र ध्वनि है जिसे पालि वैयाकरण ने निम्गहीत नाम से अभिहित किया है । (बिन्दु निग्रहीत)
२. टर्नर के अनुसार पालि में वैदिकी की भाँति ही संगीतात्मक एवं बलात्मक दोनों स्वराघात थी। ग्रियर्सन और भोलानाथ तिवारी पालि में बलात्मक स्वाराघात मानते हैं जबकि जूल ब्लाक किसी भी स्वराघात को नहीं स्वीकार करते हैं।
३. पालि में तीन लिंग, दो वचन (एक वचन और बहुवचन) का प्रयोग मिलता है। पालि में द्विवचनन नहीं होता है।
४. पालि हलन्त रहित, छह कारक, आठ लकार (चार काल, चार भाव) तथा आठ गण युक्त भाषा है।

★ प्रथम प्राकृत (पालि) के अंतर्गत ही शिलालेखी प्राकृत या अभिलेखी प्राकृत भी आता है । इसके अधिकांश लेख शिला पर अंकित होने के कारण इसकी संज्ञा 'शिलालेखी प्राकृत' हुई ।

२. द्वितीय प्राकृत या प्राकृत : (१ ई. सन से ५०० ईस्वी. तक)

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के द्वितीय भाग को प्राकृत कहा जाता है। प्राकृत प्राचीनतम प्रचलित जनभाषा है। नमि साधु ने इसका निर्वचन करते हुए लिखा है - "प्राक् पूर्व कृतं प्राकृतं" अर्थात प्राक कृत शब्द से इसका निर्माण हुआ है जिसका अर्थ है पहले की बनी हुई। जो भाषा मूल से चली आ रही है उसका नाम 'प्राकृत' है।

"प्रकृति : संस्कृतं तत्र भवं तत आगतंवा प्राकृतम" अर्थात प्रकृति या मूल संस्कृत है और जो संस्कृत से आगत है, वही प्राकृत है । (हेमचन्द्र)

इस तरह हम प्राकृत की व्युत्पत्ति दो प्रकार से देखते हैं ।

१) प्राकृत प्राचीनतम जनभाषा है । और

२) प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है ।

★ अब प्रायः सभी विद्वानो ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है ।

★ वररूचि ने 'प्राकृत प्रकाश' ग्रन्थ में प्राकृत भाषा के चार भेद बताए है जो निम्नांकित हैं ।

अ) महाराष्ट्री

ब) पैशाची

स) मागधी और

द) शौरसेनी

★ हेमचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्राकृत व्याकरण' में प्राकृत भाषा के तीन और भेदों की चर्चा की जो निम्न है ।

अ) आर्षी (अर्धमागधी)

ब) चुलिका पैशाची

स) अपभ्रंश

महाराष्ट्री :- महाराष्ट्री को प्राकृत वैयाकरणों ने आदर्श परिनिष्ठत तथा मानक प्राकृत माना है । इस प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है । जार्ज ग्रियर्सन एवं जूल ब्लाक ने महाराष्ट्री प्राकृत से ही मराठी की उत्पत्ति मानी है ।

शौरसेनी प्राकृत :- मूलतः शूरसेन या मथुरा के आसपास की बोली थी । मध्यप्रदेश की भाषा होने के कारण शौरसेनी का बहुत आदर था । वररूचि ने शौरसेनी प्राकृत को ही प्राकृत-भाषा का मूल माना है ।

पैशाची प्राकृत :- इसे पैशाचिकी, पैशाचिका, ग्राम्य भाषा, भूतभाषा, भूतवचन, भूतभाषित आदि नामों से भी पुकारा जाता है ।

मागधी प्राकृत :- मगध देश की भाषा रही है । मार्कण्डेय ने शौरसेनी से मागधी की व्युत्पत्ति बताई है ।

अर्धमागधी प्राकृत :-

के सम्बंध में जार्ज ग्रियर्सन ने बताया कि यह मध्य देश (शूरसेन) और मगध के मध्यवर्ती देश (अयोध्या या कोसल) की भाषा थी ।

अर्धमागधी का प्रयोग मुख्यत: जैन साहित्य में हुआ है । भगवान महावीर का सम्पूर्ण उपदेश इसी भाषा में निबद्ध है ।

३. तृतीय प्राकृत (अपभ्रंश) : (ईस्वी ५०० से ईस्वी १०००)

'अपभ्रंश' मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है । इसलिए विद्वानों ने 'अपभ्रंश' को एक सन्धिकालीन भाषा कहा है । व्याकरण के नियमों के अनुकूल परिष्कृत और व्याकरणबद्ध साहित्यिक प्राकृतों की सापेक्षता में वैय्याकरणों ने जनसामान्य की स्वाभाविक बोलियों को 'अपभ्रंश' अर्थात बिगड़ी हुई भाषा की संज्ञा दी है ।

ईसा पूर्व २०० में महाभाष्यकार पतंजलि ने अपभ्रंश शब्द का प्रयोग शब्दों के अपणिनीय या ऊसाधु प्रयोग के अर्थ में किया है ।

★ 'अपभ्रंश' शब्द का सर्वप्रथम प्रामाणिक प्रयोग पतंजलि के 'महाभाष्य' में मिलता है । महाभाष्यकार ने 'अपभ्रंश' का प्रयोग 'अपशब्द' के समानार्थक के रूप में किया है ।

★ अपभ्रंश का सबसे प्राचीन उदाहरण भरतमुनि के 'नाट्य-शास्त्र' में मिलते हैं, जिसमें 'अपभ्रंश' को 'विभ्रष्ट' कहा गया है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार " अपभ्रंश नाम पहले पहल बलभी के राजा धीरसेन द्वितीय के शिलालेख में मिलता है जिसमें उसने अपने पिता गुहासेन (वि. स. ६५० के पहले) को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का कवि कहा है ।" अपभ्रंश को विद्वानों ने विभ्रष्ट, आंभीर, अवहंस, अवहट्ट, पटमंजरी, अवहत्थ, औहट, अवहट आदि नामों से भी पुकारा है ।

विभिन्न विद्वानों ने अपभ्रंश के निम्नलिखित भेद बताए हैं ।

विद्वान	अपभ्रंश के भेद
नमि साधु	१) उपनागर २) आभीर ३) ग्राम्य
मार्कण्डेय	१) नागर २) उपनागर ३) प्राचड
याकोबी	१) पूर्वी २) पश्चिमी ३) दक्षिणी ४) उतरी
तागरे	१) पूर्वी २) पश्चिमी ३) दक्षिणी
नामवर सिंह	१) पूर्वी और पश्चिमी

अपभ्रंश की ध्वनियाँ :

डॉ. उदयनारायण तिवारी ने अपभ्रंश की ध्वनियों का वर्गीकरण निम्न ढंग से किया है :-

स्वर :-

ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ऑ

दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ओ

<u>व्यंजन :-</u>

कण्ठय् - क, ख, ग, घ
तालव्य - च, छ, ज, झ
मूर्धन्य - ट, ठ, ड, ढ, ण
दन्त्य - त, थ, द, ध (न - पूवी अप०)
ओष्ठ्य - प, फ, ब, भ, म
अन्तस्थ - य, र, ल, व (श - पूर्वी अपभ्रंश)
उष्म - स, ह

स्वर - १० **व्यंजन - ३०**

<u>अपभ्रंश भाषा की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ :-</u>

१. अपभ्रंश को उकार बहुलता भाषा कहा जाता है ।

२. अपभ्रंश वियोगात्मक हो रही थी अर्थात - अपभ्रंश में विभक्तियों के स्थान पर स्वतंत्र परसर्गो का प्रयोग होने लगा था।

३. अपभ्रंश में दो वचन (एकवचन और बहुवचन) और दो ही लिंग (पुलिंग और स्त्रीलिंग) मिलते हैं ।

४. अवहट्ट अपभ्रंश का ही परवर्ती या परिवर्तित रूप हैं ।

५. डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी को 'अवहट्ट' कहा है ।

६. 'अवहट्ट' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग - ज्योतिश्वर ठाकुर ने अपने 'वर्णरत्नाकर' ग्रन्थ में किया है ।

७. अपभ्रंश में रूपों की संख्या कम हो गई ।

८. अपभ्रंश में नपुंसकलिंग समाप्त हो गया ।

९. अपभ्रंश में कहीं कहीं आदि स्वर का लोप हो जाता है । जैसे - अरण्य > रण्ण, अरघट्ट > रहट्ट

१०. अपभ्रंश में शब्द का आदि 'य', 'ज' में परिणत हो जाती है । जैसे - याती > जाति, यमल > जमल, यौवन > जोवन ।

११. मध्य व्यंजनों में अपभ्रंश का प्रायः लोप हो जाता है और महाप्राण व्यंजनों के स्थान पर.. 'ख' शेष रह जाता है ।

जैसे - राजन > राअ, पाद > पाअ, चतुर्थ > चउत्थ, सखि > सहि, दीर्घ > दीह, शोभा > सीह,

१२. अपभ्रंश में आदि अक्षर के स्वर को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है । क्योंकि स्वराघात प्रायः आदि अक्षर पर पड़ता है ।

जैसे - ध्यान > झाण, माणिक्य > माणिक, घोटक > घोडअ, गंभीर > हिर ।

६.५ आधुनिक भारतीय आर्य भाषा :- ई. वी. सन् १००० से अब तक

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्‌भव १००० ई. के लगभग हुआ है । इसका विकास अपभ्रंश से हुआ है । इस वर्ग की भाषाओं का काल तब से अब तक माना गया है । इस काल में प्रयुक्त भाषाओं की गणना आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में की जाती है । इस वर्ग की भाषाओं के विकास के कुछ समय पश्चात से सम्बंधित साहित्य प्राप्त होता है ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का सर्वप्रथम वर्गीकरण डॉ. ए. एफ. आर. हार्नले से सन् १८८० में किया । डॉ. हार्नले ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को ४ वर्गों में विभाजित किया है, जो निम्नांकित है -

१) पूर्वी गौडियन - पूर्वी हिन्दी, बंगला, असमी, उडिया ।
२) पश्चिमी गौडियन - पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी ।
३) उतरी गौडियन - गढ़वाली, नेपाली, पहाड़ी ।
४) दक्षिणी गौडियन - मराठी ।

डॉ. हार्नले के अनुसार जो आर्य मध्यप्रदेश अथवा केन्द्र में थे 'भीतरी आर्य' कहलाए और जो चारों ओर फैले हुए थे 'बाहरी आर्य' कहलाए ।

लगभग ई. १००० के आस-पास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से उपर्युक्त आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ । आधुनिक भाषाओं में भारतीय साहित्य की रचना तो ई. १००० में या उसके बाद हुई, किन्तु उसका जन्म ई. १००० से पहले हो चुका था । वस्तुतः कोई भी भाषा जन्म होते ही साहित्य की भाषा नहीं बनती । पैदा होने के सौ-डेढ़ सौ वर्ष बाद ही स्वीकृति मिलने तथा उनका स्वरूप कुछ निश्चित होने पर ही लोग उसे साहित्य - रचना के लिए अपनाते हैं ।

डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का वर्गीकरण निम्नांकित ढंग से प्रस्तुत किया है ।

१. <u>बाहरी उपशाखा :-</u>

क) उतरी - पश्चिमी समुदाय - i) लहँदा ii) सिन्धी
ख) दक्षिणी समुदाय - i) मराठी
ग) पूर्वी समुदाय - i) उडिया ii) बिहारी iii) बंगला iv) असमिया

२. <u>मध्य उपशाखा :-</u>

क) मध्यवर्ती समुदाय - i) पूर्वी हिन्दी

३. <u>भीतरी उपशाखा :-</u>

क) केन्द्रीय समुदाय -
i) पश्चिमी हिन्दी ii) पंजाबी iii) गुजराती iv) भीसी
iv) खानदेशी ii) राजस्थानी
ख) पहाड़ी समुदाय -

i) पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली ii) मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी iii) पश्चिमी - पहाड़ी

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना ध्वनिगत एवं व्याकरणगत आधारों पर करते हुए अपना वैज्ञानिक वर्गीकरण निम्न वर्गों में प्रस्तुत किया -

१) उदीच्य - सिन्धी, लहँदा, पंजाबी
२) प्रतीच्य - राजस्थानी, गुजराती
३) मध्य देशीय - पश्चिमी हिन्दी
४) प्राच्य - पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, असमिया, बंगला
५) दक्षिणात्य - मराठी

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने डॉ. चटर्जी के वर्गीकरण में सुधार करते हुए अपना निम्नांकित वर्गीकरण प्रस्तुत किया -

१) उदीच्य - सिन्धी, लहँदा, पंजाबी
२) प्रतीच्य - गुजराती
३) मध्य देशीय - राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी
४) प्राच्य - उड़िया, असमिया, बंगला
५) दक्षिणात्य - मराठी

डॉ. हरदेव बाहरी ने आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है -

हिन्दी वर्ग	**हिन्दीतर (अ - हिन्दी) वर्ग**
मध्य पहाड़ी, राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी	उतरी – (नेपाली)
हिन्दी, बिहारी (ये सभी हिन्दी की उपभाषाएँ है ।)	पश्चिमी - (पंजाबी, सिन्धी, गुजराती) दक्षिणी - (सिंहली, मराठी)
	पूर्वी - (उड़िया, बंगला, असमिया)

<u>प्रमुख आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताएँ :-</u>

१) सिन्धी शब्द का सम्बन्ध संस्कृत सिन्धु से है । सिन्धु देश में सिन्धु नदी के दोनों किनारों पर सिन्धी भाषा बोली जाती है ।

२) लहँदा का शब्दगत अर्थ है 'पश्चिमी' । इसके अन्य नाम पश्चिमी पंजाबी, हिन्दकी, जटकी, मुल्तानी, चिभाली, पोठवारी आदि है ।

३) पंजाबी शब्द 'पंजाब' से बना है जिसका अर्थ है पाँच नदियों का देश । पंजाबी की अपनी लिपि लंए थी जिसमें सुधार कर गुरू अंगद ने गुरूमुखी लिपि बनाई ।

४) पंजाबी की मुख्य बोलियाँ माझी, डोगरी, दोआबी, राठी आदि है ।

५) गुजराती गुजरात प्रदेश की भाषा है । गुजरात का सम्बन्ध 'गुजर' जाति से है ।

६) मराठी महाराष्ट्र प्रदेश की भाषा है । इसकी प्रमुख बोलियाँ कोंकणी, नागपुरी, कोष्ठी, माहारी आदि है ।

७) मराठी की अपनी लिपि देवनागरी है किन्तु कुछ लोग मोड़ी लिपि का भी प्रयोग करते हैं ।

८) बंगला संस्कृत शब्द बंग + आल (प्रत्यय) से बना है । यह बंगाल प्रदेश की भाषा है । बंगला प्राचीन देवनागरी से विकसित बंगला लिपि में लिखी जाती है ।

९) असमी (असमिया) असम प्रदेश की भाषा है । इसकी मुख्य बोली विश्नुपुरिया है । असमी की अपनी लिपि बंगला है ।

१०) उड़िया प्राचीन उत्कल अथवा वर्तमान उड़ीसा (ओडिसा) की भाषा है । इसकी प्रमुख बोली गंजामी, सम्भलपुरी, भत्री आदि है ।

११) उड़िया भाषा बंगला से बहुत मिलती-जुलती है, किन्तु इसकी लिपि ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित है ।

यहाँ सभी आधुनिक भाषाओं का परिचय दिया जा रहा है ।

मराठी :-

मराठी महाराष्ट्र की भाषा है । मराठी का नाम संस्कृत शब्द 'महाराष्ट्रीय' से विकसित है । इसकी व्युत्पत्ति महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुई है । पूना के आस-पास बोली जाने वाली भाषा ही परिनिष्ठ मराठी मानी जाती है । इसकी लिपि देवनागरी है । नित्य के व्यवहार में कहीं - कहीं मोड़ी का प्रयोग भी होता है । मातृभाषियों की संख्या के आधार पर मराठी विश्व में दसवें और भारत में तीसरे स्थान पर हैं । मराठी भाषियों की अनुमानित संख्या लगभग १० करोड़ है । मराठी की प्रमुख बोलियाँ कुणबी, कोंकणी, हलवी आदि है । १९७१ की जनगणना के अनुसार मराठी बोलनेवालों की संख्या ४,१७,२३,८९३ थी । मराठी में प्राचीन और आधुनिक साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है।

गुजराती :-

गुजराती नाम का सम्बन्ध गुर्जर जाती से है । भारत की दूसरी भाषाओं की तरह गुजराती भाषा का जन्म भी संस्कृत भाषा से हुआ है । गुजराती भाषा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में से एक है और इसकी विकास शौरसेनी प्राकृत के परवर्ती रूप 'नागर अपभ्रंश' से हुआ है । गुजराती भाषा का क्षेत्र गुजरात सौराष्ट्र और कच्छ के अतिरिक्त महाराष्ट्र का सीमावर्ती प्रदेश तथा राजस्थान का दक्षिण पश्चिमी भाग भी है । सौराष्ट्री और कच्छी इसकी अन्य प्रमुख बोलियाँ हैं ।

गुजराती की अपनी लिपि है जो कि देवनागरी का ही भिन्न रूप है। इसमें शिरोरेखा नहीं लगाई जाती है। गुजराती की मुख्य बोलियाँ पट्टती, काठियावाडी, कुरली इत्यादी है।

भारत के अलावा बांग्लादेश, बोत्सवाना, कनाडा, फिजी, केन्या, मलावी, मॉरीशस, मोंजाम्बिक, ओमान, पाकिस्तान, सिंगापूर, दक्षिण अफ्रीका, तंजानिया, युंगाडा आदि में भी गुजराती बोली जाती है।

अक्षयदासा (१५९१ - १६५६)
प्रेमानंद भट्टा (१६३६-१७३४)
श्यामलदास भट्टा (१६९९ - १७६९)
यह गुजराती के तीन महान कवि है।

गुजराती भाषा गुजराती लिपि में लिखी जाती है। २०११ की जनगणना के मुताबिक देश में ४.७४ फीसदी लोग गुजराती बोलते है।

राजस्थानी :

अधिकांश विद्वानों के मतानुसार, राजस्थानी भाषा का विकास प्राकृत या शौरसेनी से हुआ है। किंतु डॉ. चाटुर्ज्या इसका विकास अशोककालीन सौराष्ट्री प्राकृत से मानते हैं। राजस्थानी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में से एक है। आज के दौर में यह केवल राजस्थान की सीमाओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि मध्यप्रदेश, गुजरात के कुछ भाग पाकिस्तान के पूर्वी भाग और दक्षिण पूर्वी सीमा प्रदेशों में भी बोली जाती है।

डॉ. ग्रियर्सन ने राजस्थानी की पाँच बोलियाँ मानी है।

१) पश्चिमी राजस्थानी (मारवाडी)
२) उत्तर पूर्वी राजस्थानी (मेवाती अहीरवाटी)
३) मध्यपुर्वी या पूर्वी राजस्थानी (ढूँढ़ाती हाडौती)
४) दक्षिण - पूर्वी राजस्थानी (मालवी)
५) दक्षिणी राजस्थानी (निमाडी)

इनके अलावा राजस्थान में बंजारा भाषा भी बोली जाती है जो कि एक स्वतंत्र भाषा है। राजस्थानी साहित्य का क्षेत्र समृद्ध है। प्रसिद्ध गुजराती काव्य पद्मनाभ कविकृत राजस्थानी या मारवाडी भाषा की ही देन है।

पंजाबी :

पंजाबी हिन्द - यूरोपीय, हिन्द इरानी, हिन्द आर्य भाषा परिवार की देन है। भारत में यह मुख्यतः पंजाब में बोली जाती है। पाकिस्तान की एक बडी आबादी भी पंजाबी बोलती है। यह विश्व की ११ वीं सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। कम से कम पिछले ३०० वर्षो से लिखित पंजाबी भाषा का मानक रूप, मानक बोली पर आधारित है जो कि ऐतिहासिक माझा क्षेत्र की भाषा है। ग्रियर्सन ने पूर्वी पंजाबी को 'पंजाबी' और पश्चिमी पंजाबी को 'लहंदा' कहा है। पंजाबी की एक तीसरी उपभाषा 'डोगरी' है जो कि जम्मू काश्मीर में बोली जाती है।

पंजाबी में सबसे पुरानी रचनाएँ नाथयोगी काल की है, जो नौवीं से चौदहवीं शताब्दी की है, जब पंजाब सामाजिक, धार्मिक आंदोलनों का मुख्य केन्द्र था।

गुरु नानक पंजाबी भाषा, साहित्य और संस्कृति के जनक है। प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने पुराने शब्दादेशी ढांचे को रूपमय मानस छवियों में बदल दिया। पंजाबी भाषा की लिपि गुरुमुखी है।

तेलुगु :

तेलुगु आंध्र प्रदेश और तेलंगना राज्यों की मुख्य भाषा और राजभाषा है। ये द्रविड़ भाषा परिवार के अंतर्गत आती है। तेलुगु शब्द का मूलरुप संस्कृत में त्रिलिंग है। अधिकांश संस्कृत शब्दों से संकलित भाषा "आंध्र" भाषा के नाम से व्यवहृत होती है। डॉ. चिलुकूरि नारायण राव के मतानुसार तेलुगु भाषा द्रविड परिवार की नहीं किंतु प्राकृतजन्य है। इस भाषा मे करीब ७५ प्रतिशत संस्कृत शब्दों का सम्मिश्रण है। एक बहुत ही मधुर भाषा है। स्वरांत भाषा होने के कारण तेलुगु संगीत के लिए अत्यंत उपयुक्त मानी गई है।

तेलुगु लिपि मोतियों की माला के समान सुंदर प्रतीत होती है। तेलुगु और कन्नड लिपियों में बड़ा ही सादृश्य है।

तेलुगु साहित्य का विभाजन (१) पुराणकाल (२) काव्यकाल (३) हासकाल और (४) आधुनिककाल में बाँटा गया है।

कन्नड :

कन्नड भारत के कर्नाटक राज्य में बोली जाने वाली भाषा है। लगभग ४.५० करोड़ लोग कन्नड भाषा प्रयोग करते है। विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली ३० भाषाओं की सुची में कन्नड २७ वें स्थान पर आती है। कन्नड अन्य द्रविड भाषाओं की तरह है। कन्नड संस्कृत भाषा से बहुत प्रभावित है। कर्नाटक के अलावा केरल, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, गोवा और तमिलनाडु में कन्नड बोली जाती है। कन्नड भाषा के विकासक्रम की चार अवस्थाऐं मानी गई हैं, जो इस प्रकार है –

१) अतिप्राचीन कन्नड
२) हक कन्नड
३) नड गन्नड
४) होस गन्नड

वर्तमान कन्नड की लिपि देवनागरी लिपि से भिन्न है। कन्नड़ की वर्णमाला में कुल ४७ वर्ण है। आजकल इसकी संख्या बावन तक बढ़ा दी गई है।

कन्नडा की लिपि को ब्राह्मी से व्युत्पन्न लिपि माना जाता है।

तमिल :

तमिल विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। इसकी उत्पति के संबंध में अभी तक यह निर्णय नहीं हो सका है कि किस समय इस भाषा का आरम्भ हुआ। तमिल भाषा में उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर यह निर्विवाद निर्णय हो चुका है कि तमिल भाषा ईसा से कई सौ वर्ष पहले ही सुसंस्कृत और सुव्यवस्थित हो गई थी।

तमिल, भारत के दक्षिणी भाग के अलावा, श्रीलंका, मॉरीशस और सिंगापूर, मलेशियाँ में भी बोली जाती है।

तमिल साहित्य कम से कम पिछले दो हजार वर्षो से अस्तित्व में है। जो सबसे आरंभिक शिलालेख पाए गए है वे तीसरी शताब्दी ईसापूर्व के आस-पास के हैं। तमिल भाषा वह एलुतु लिपि में लिखी जाती है। अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में इसमें कम अक्षर हैं। कुछ विद्वानों ने संस्कृत भाषा को द्रविड़ शब्द से तमिल शब्द की उत्पति मानकर द्रविड़ > द्रविड > द्रमिड > द्रमिल > तमिल आदि रुप दिखाकर तमिल की उत्पति सिद्ध की है, किन्तु तमिल के अधिकांश विद्वान इस विचार से सर्वथा असहमत है।

मलयालम :

मलयालम भारत के केरल प्रान्त में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है। मलयालम को कैरली भी कहते हैं। केरल के अलावा ये तमिलनाडु के कन्याकुमारी, कर्नाटक, लक्षद्वीप तथा अन्य कई देशों में बसे मलयालियों द्वारा बोली जाती है।

मलयालम की उत्पति लगभग १ हजार वर्ष तक मानी गई है। यह भाषा संस्कृतजन्य नहीं है।

कई विद्वानों का मानना हैं कि मलयालम का साहित्य उस समय पल्लवित होने लगा था जबकि तमिल का साहित्य फल फूल चुका था। संस्कृत साहित्य की ही भाँति तमिल साहित्य को भी हम मलयालम की प्यास बुझाने वाली स्त्रोतस्विनी कह सकते है।

६.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने 'भाषा' शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई हैं। इसी के साथ प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में वैदिक तथा लौकिक संस्कृत, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा और आधुनिक भारतीय भाषाओं का सामान्य परिचय आदि का अध्ययन किया। भाषा मनुष्य के अभिव्यक्ति का साधन हैं। उसे वाणी के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक भाषाओं के विकासक्रम और विशेषताओं को प्रस्तुत किया है।

६.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) भारत में २००१ की जनगणना के अनुसार कितनी मुख्य भाषाएँ है ?
२) आर्य भाषा किस परिवार की भाषा है ?
३) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का प्राचीनतम नमूना किस साहित्य में दिखाई देता है ?
४) वैदिक साहित्य कितने भागों में बाँटा है ?
५) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा कितने कालों में बाँटा है ?

६.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में वैदिक और लौकिक संस्कृत की चर्चा करते हुए विशेषताएँ लिखिए।

२) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के विकासक्रम पर चर्चा करें।

३) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का परिचय देकर विशेषताएँ लिखिए।

४) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की विशद चर्चा करें।

६.९ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

३) हिंदी भाषा का उद्‌भव और विकास - डॉ. उदयनारायण तिवारी

❖❖❖❖

इकाई-७

हिंदी का वाक्य विन्यास

इकाई का स्वरूप :

७.१ इकाई का उद्देश्य
७.२ प्रस्तावना
७.३ पद
७.४ पदक्रम
७.५ वाक्य के भेद
७.५.१ अर्थ के आधार पर
७.५.२ रचना के आधार पर
७.६ सारांश
७.७ लघुत्तरीय प्रश्न
७.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न
७.९ संदर्भ ग्रंथ

७.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से व्याकरण के निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा।

i. 'पद' की परिभाषा और नियमावली स्पष्ट होगा।
ii. पदक्रम की रचना, नियम और व्यवहार स्पष्ट होगा।
iii. वाक्य की परिभाषा स्पष्ट होगी।
iv. अर्थ के आधार पर वाक्यों के भेद स्पष्ट होगें।
v. रचना के आधार पर वाक्यों के भेद स्पष्ट होगें।

७.२ प्रस्तावना

व्याकरण वह विद्या है जिसके द्वारा किसी भाषा को शुद्ध बोला, पढ़ा और शुद्ध लिखा जाता है। किसी भी भाषा के लिखने, पढ़ने और बोलने के निश्चित नियम होते है। भाषा की शुद्धता व सुंदरता को बनाए रखने के लिए इन नियमों का पालन आवश्यक होता है। ये नियम भी व्याकरण के अंतर्गत आते हैं। व्याकरण भाषा के अध्ययन का महत्वपूर्ण हिस्सा व्याकरण उस शास्त्र को कहा जाता है, जिसमें भाषा के शुद्ध करने वाले नियम बताए गए है। किसी भी भाषा के अंग प्रत्यंग का विश्लेषण तथा विवेचन व्याकरण कहलाता है।

व्याकरण का दूसरा नाम "शब्दानुसान" भी है। वह शब्दसंबंधी अनुशासन करता है, बतलाता है कि किसी शब्द का किस तरह प्रयोग करना चाहिए। भाषा में शब्दों की प्रवृत्ति अपनी ही रहती है, व्याकरण के कहने से भाषा में शब्द नहीं चलते; किन्तु भाषा की प्रवृत्ति के अनुसार व्याकरण शब्दप्रयोग का निर्देश करता है। यह भाषा पर शासन नहीं करता।

व्याकरण के अनेक भाग है, जिनमें से कुछ प्रमुख तत्व पद और वाक्य का अध्ययन आपको व्याकरण के कुछ प्रमुख नियमों से आपका परिचय कराऐंगें।

७.३ पद

एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र, सार्थक ध्वनि को 'शब्द' कहते हैं; जैसे - राम, स्कूल, आत्मा, विद्वान आदि। ये शब्द जब तक वाक्य में प्रयुक्त नहीं किए जाते जब तक स्वतंत्र होते हैं, लेकिन वाक्य में प्रयुक्त इन शब्दों का अस्तित्व स्वतंत्र न रहकर वाक्य के लिंग, वचन, कारक और क्रिया के नियमों से अनुशासित हो जाता है। व्याकरण के नियमों में बंधन से ये शब्द, शब्द न रहकर 'पद' बन जाते हैं। जब कोई शब्द व्याकरण के नियमों में बँधकर वाक्य में प्रयुक्त होता है, तो पद कहलाता है। वाक्य में अनेक पद होते है। इन पदों का व्याकरणिक परिचय देना ही पद-परिचय कहलाता है।

पद की परिभाषा -

वाक्य में प्रयुक्त पद (शब्द) का पूर्ण व्याकरणिक परिचय ही पद परिचय कहलाता है।

वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही 'पद' कहलाते है।

शब्द और पद में अंतर

प्रचलित भाषा में शब्द को ही पद कहा जाता है। लेकिन दोनों में अंतर स्पष्ट देखा जाता है। वाक्य से परे शब्द 'शब्द' होता है और वाक्य में प्रयुक्त शब्द 'पद'। 'शब्द' शब्दकोश में पाए जाते हैं लेकिन वाक्य और भाषा पद में। वाक्य पदों से मिलकर बनता है शब्दों से नहीं। वाक्य में प्रयुक्त शब्द की आकृति और रूप में परिवर्तन किया जाता है।

शब्द (पद) के भेद -

रूप परिवर्तन अथवा प्रयोग के आधार पर शब्द के मुख्यतः दो भेद है।

१) विकारी और
२) अविकारी

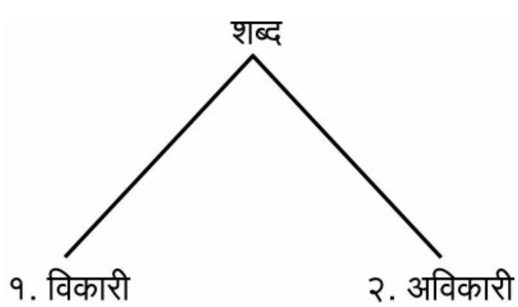

संज्ञा	सर्वनाम	क्रियाविशेषण	समुच्चयबोधक
विशेषण	क्रिया	संबंधबोधक	विस्मयादिबोधक

१) विकारी : जिन शब्दों में प्रयोगानुसार कुछ परिवर्तन उत्पन्न होता है, वे 'विकारी शब्द' कहलाते हैं। बुढ़ापा, सोना, बुरा, जागना, दौड़ना, तू, मैं आदि विकारी शब्द हैं।

इसके मुख्य चार भेद हैं।

१) संज्ञा
२) सर्वनाम
३) विशेषण
४) क्रिया

२) अविकारी : जो शब्द प्रयोगानुसार परिवर्तित नहीं होते वे शब्द 'अविकारी शब्द' कहलाते हैं। धीरे-धीरे, तथा, अथवा, और, किंतु, वाह, अच्छा! ये सभी अविकारी शब्द है इनके भी मुख्य रूप से चार भेद हैं।

१) क्रिया विशेषण
२) समुच्चयबोधक
३) संबंधबोधक
४) विस्मयादिबोधक

ऊपर कहा गया है कि सार्थक ध्वनि-समूह को शब्द कहा जाता हैं। इसे मूल रुप में समझना चाहिए। कोई भी शब्द जब तक पद नहीं बन जाता तब तक इसका प्रयोग नहीं हो सकता। पद बनने के लिए शब्द में विशेष अर्थ के बोधक प्रत्यय लगाए जाते हैं। इन प्रत्ययों के लगाने पर ही शब्द प्रयोग के योग्य होते हैं। इसलिए संस्कृत में कहा गया है -

"न केवल प्रकृतिः प्रयोक्तण्या, नापि केवलः प्रत्ययः अपद न प्रयुज्जीता"

अर्थात न केवल प्रकृति (मूल शब्द, धातु) का प्रयोग करना चाहिए और न केवल प्रत्यय का अपद (शब्द को पद बनाए बिना) का प्रयोग ना करें। इस बात को यों समझाया जा सकता हे।

शब्द	पद
मूल शब्द (प्रकृति प्रतिपादक धातु)	प्रकृति + प्रत्यय = पद

इससे स्पष्ट होता है कि प्रकृति और प्रत्यय के योग से पद बनता है और वाक्य में दोनो मिलकर प्रयुक्त होते हैं। अकेले कोई भी नहीं आता। महर्षि पाठिनी ने 'सुपतिङन्तं पद' कहा है। उनके अनुसार 'सुप' और तिङन्त प्रत्यय से युक्त शब्द ही पद कहलाता है। दूसरे शब्दों में 'शब्द' केवल वर्णमाला होता है। 'पद' वह शब्द हैं जिसमें किसी सम्बन्धतत्व या प्रत्यय जुड़ने से वाक्य में प्रयोग करने की क्षमता आ जाती है।

महर्षि पाणिनि का कहना है कि जिन शब्दों के अंत मे सुप (विभक्ति प्रत्यय) और तिङ (क्रिया के प्रत्यय लगते हैं वे पद कहलाते हैं। पद बनने के लिए शब्द में विभक्ति या क्रिया प्रत्यय लगने चाहिए। 'सुप' प्रत्ययों के जोड़ने से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, पद बनते हैं और तिङ प्रत्ययों को जोड़ने से क्रियापद बनते हैं। संस्कृत में 'पत्र' एक शब्द है। इस रूप में यह शब्द वाक्य में प्रयुक्त नहीं होता। परन्तु 'पत्रं पतति' में पत्र पद है।

शब्द और पद की संकल्पना से स्पष्ट हो जाता है कि शब्द पर ही पद आधारित है। अब तक हमने शब्द और पद को परिभाषित करने का प्रयास किया है। यहाँ इन दोनों के अंतर को स्पष्ट किया जा रहा है। उच्चारण की दृष्टि से भाषा की इकाई 'ध्वनि' है। सार्थक इकाई वाक्य है। वाक्य में शब्द या पद रूपतत्व के अंतर्गत आया करते हैं। उनका प्रयोग पदानुसार व्यहत करना होता है। संस्कृत वैयाकरणों ने शब्द के दो भेद किए शब्द और पद। शब्द से उनका तात्पर्य विभक्तिहीन शब्द से है, जिसें प्रतिपादिक भी कहते हैं। 'पद' शब्द का प्रयोग वैसे शब्द के लिए किया जाता है, जिसमें विभक्ति लगी रहती है। इस प्रकार 'शब्द' विभक्ति रहित या 'पद' विभक्ति सहित होते हैं। 'पद' और 'शब्द' का भेदकतत्व विभक्ति है। तात्पर्य यह है कि विभक्तियों के योग से ही शब्दों में प्रयोग योग्यता आती है। शब्द में भाव-बोधक और अर्थ वहन की क्षमता होती है पर प्रयोग योग्यता पद के द्वारा ही होती है।

७.४ पदक्रम

पदक्रम को समझने से पहले हम कोशिश करते है कि पहले पदबंध को समझा जाए। उपवाक्य से छोटा घटक पदबंध है। अवाक्य पदबंधों से मिलकर बनता है। पदबंध वाक्य में निर्धारित व्याकरणिक प्रकार्यों को पूरी करने वाली इकाई है। जिनका अस्तित्व केवल वाक्य के अंतर्गत ही संभव है, वाक्य के बाहर नहीं। उदाहरण देखें

कर्ता पदबंध	कर्म पदबंध	क्रिया पदबंध
१) ड्राइवर	गाड़ी	धो रहा है
२) मेरा ड्राइवर	दोनों गाड़ियाँ	धो रहा है
३) हमारा पुराना ड्राइवर	बाहर रखी सभी गाड़ियाँ	धो रहा है

पदबंध से सबसे छोटी इकाई शब्द हैं। शब्दों के योग से ही पदबंध की रचना होती है। जैसे हमारा + पुराना + ड्राइवर = हमारा पुराना ड्राइवर

ऊपर हमने वाक्य को शब्दों अथवा पदबंधों से बनी एक रचना कहा है। इससे यह नहीं समझना चाहिए वाक्य बिखरे हुए शब्दों का समूह मात्र है। आप किसी भी को गौर से देखें तो आप पाएँगे कि वाक्य के विभिन्न घटकों के बीच एक प्रकार की क्रमबद्धता होती है। इसे हम पदक्रम (या शब्दक्रम) कहते हैं। आप यह भी पाएँगे कि इन घटकों के बीच एक प्रकार का व्याकरणिक संबंध भी है जो शब्दों (घटकों) के प्रयोग स्थान द्वारा या फिर विभक्तियों (ने, को, में, से, आदि) द्वारा व्यक्त होता हैं इसे हम कारक या कारक संबंध कहते हैं। आप यह भी पाएँगे कि वाक्य के कुछ घटक अन्य घटकों के रूपों को वचन, लिंग, पुरुष की दृष्टि से प्रभावित करते हैं। यह अन्विति कहलाता है। आप यह भी पाएँगे कि एक ही संरचनात्मक कोटि का शब्द होते हुए भी आप उसके स्थान पर दूसरा शब्द नहीं इस्तेमाल कर सकते है। दूसरे शब्दों में, किसी भी संज्ञा

आदि शब्द की जगह वाक्य में कोई भी दूसरा संज्ञा आदि शब्द आप नहीं रख सकते। शब्दों के अर्थ में एक प्रकार की संगति होती है तभी वे शब्द सही वाक्य का निर्माण करते हैं। वाक्य के इस लक्षण को हम अर्थसंगति या योग्यता कहते हैं।

पदक्रम की परिभाषा :

१) शब्द से बड़ी किसी भी रचना में शब्दों का पूर्वापर क्रम शब्दक्रम या पदक्रम कहलाता है।
२) वाक्यों में शब्दों या पदों के रखने का ढंग पदक्रम कहलाता है।
३) पदक्रम को वाक्य विन्यास भी कहते है। शब्दों की वाक्य में रखने का ढंग।
पदक्रम - कर्ता + कर्म + क्रिया

उदाहरण के लिए हिंदी, अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में संज्ञा पदबंध का शब्दक्रम है। विशेषण + संज्ञा, जैसे बड़ा लड़का, सुंदर मकान कुछ अन्य भाषाओं में (जैसे फ्रांसीसी, रोमानियन आदि) यह क्रम उल्टा होता है अर्थात संज्ञा + विशेषण। इसी प्रकार हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में क्रिया वाक्य के अंत में आती है जबकि अंग्रेजी आदि भाषाओं में कर्ता के बाद, अर्थात मध्य में।

यहाँ हमारी चर्चा का विषय वाक्य के घटकों के बीच शब्दक्रम व्यवस्था है। वाक्य के संदर्भ में इसे पदक्रम कहते हैं। वाक्य के स्तर पद पदक्रम लगभग वही भूमिका निभाते हैं जो कारक विभक्ति की होती हैं। इसलिए कोई शब्द वाक्य में किस स्थान पर और किससे पहले या बाद में प्रयुक्त होता है यह कभी-कभी प्रकट करता है कि वह शब्द वाक्य में कर्ता है, कर्म है या कोई और व्याकरणिक प्रकार्य कर रहा है। इस दृष्टि से पदक्रम का वाक्य में वही महत्व है जो कारक का है। उदाहरण के लिए इन दो वाक्यों में प्रथम स्थान में अपने के कारण ही साँप और मेढ़क कर्ता है।

साँप मेढ़क खा रहा है (साँप = कर्ता)
मेढंक को साँप खा रहा है (मेढंक = कर्ता)

हिंदी और भारतीय भाषाओं में वाक्यों का पदक्रम है : कर्ता - कर्म - क्रिया जिसमें क्रिया का स्थान वाक्य के सबसे अंत में है। अंग्रेजी में इसे SOV रचना कहते है। अर्थात subject - object - verb। अंग्रेजी इसके विपरीत SVO पदक्रम वाली भाषा है अर्थात जिसमें क्रिया का स्थान कर्ता के बाद होता है और कर्म का उसके बाद।

हिंदी के वाक्यों की सहज पदक्रम व्यवस्था इस प्रकार है: हिंदी वाक्य = (+ कर्ता ± कर्म ± पूरक ± क्रिया विशेषण + क्रिया) इसमें कर्ता तथा क्रिया अनिवार्य घटक (±) है, कर्म और पूरक ऐच्छिक घटक (±) है और क्रिया विशेषण ऐसा ऐच्छिक घटक है जो अपने स्थान से पूर्व किसी भी स्थान पर आ सकता है। अर्थात कर्ता से पहले या बाद में, कर्म से पहले या बाद में और क्रिया से पहले, लेकिन बाद में नही।

परसो मैं चिट्ठी लिखूँगा
मैँ परसो चिट्ठी लिखूँगा
मैं चिट्ठी परसो लिखूँगा।

वाक्य रचना में मुख्य रूप से दो बातों को विशेष महत्व दिया जाता है। पहला, व्याकरण सिद्ध पदों को क्रम से रखना तथा उन पदों का परस्पर संबंध स्पष्ट करना। इन दो नियमों के आधार पर वाक्य की रचना होती है। वाक्य विन्यास के अंतर्गत मुख्य रूप से निम्न दो विषय आते है।

१) पदों का क्रम
२) पदों का अन्वय

१) पदों का क्रम एवं नियम :

हिंदी के वाक्य में पदक्रम के निम्नलिखित नियम है -

१) कर्ता पहले और क्रिया अंत में होती है जैसे - वह गया। राम पुस्तक पढ़ता है। रमेश चलते - चलते शाम तक वहाँ जा पहुँचा। इन वाक्यों में 'वह', 'राम' तथा 'रमेश' कर्ता (पहले शब्द) हैं और 'गया', 'पढ़ता है', 'जा पहुँचा' क्रिया (अंतिम शब्द)

२) क्रिया का कर्म या उसका पूरक क्रिया से पहले आता है तथा क्रिया कर्ता के बाद; जैसे - मैंने सेब खाया। पिता ने पुत्र को पैसे दिए। इन वाक्यों में 'सेब', 'पुत्र' तथा 'पैसे' कर्म है 'खाया' और 'दिए' क्रिया तथा 'मैंने' और 'पिता' कर्ता।

३) यदि दो कर्म हों तो गौंण कर्म पहले तथा मुख्य कर्म बाद में आता है, जैसे - पिता ने पुत्र को पैसे दिए। इसमें 'पुत्र' गौण कर्म है तथा 'पैसे' मुख्य कर्म।

४) कर्ता, कर्म तथा क्रिया के विशेषक (विशेषण या क्रियाविशेषण) अपने - अपने विशेष्य से पहले आते है; जैसे

मेधावी छात्र मन लगाकर पढ़ रहा है। इन वाक्य में मेधावी (विशेषण) तथा मन लगाकर (क्रिया विशेषण) क्रमशः अपने-अपने विशेष्य छात्र (संज्ञा) तथा क्रिया (पढ़ रहा है) से पहले आए हैं।

५) विशेषण सर्वनाम के पहले नहीं आ सकता, वह सर्वनाम के बाद ही आएगा; जैसे : - वह अच्छा है। यह काला कपड़ा है। यहाँ सर्वनाम 'वह' और 'यह' के बाद ही विशेषण 'काला' और 'अच्छा' आए हैं।

६) स्थानवाचक या कालवाचक क्रियाविशेषण कर्ता के पहले या ठीक पीछे रखे जाते है; जैसे : आज मुझे जाना है। तुम कल आ जाना। इन वाक्यों में कालवाचक क्रियाविशेषता 'आज' और 'कल' अपने कर्ता 'मुझे' और 'हम' के क्रमशः पहले तथा ठीक बाद में आए हैं।

७) निषेधार्थक क्रियाविशेषण क्रिया से पहले आए है; जैसे :

तुम वहाँ मत जाओ। मुझे यह काम नहीं करना।

इन वाक्यों में निषेधार्थक क्रियाविशेषण 'मत', 'नहीं' क्रमशः अपनी क्रिया 'जाओ' तथा 'करना' से पहले आए है।

८) प्रश्नवाचक सर्वनाम या क्रियाविशेषण प्रायः क्रिया से पहले आते हैं; जैसे : -

तुम कौन हो ? तुम्हारा घर कहाँ हो ?

इन वाक्यों में प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कौन' तथा क्रिया विशेषण 'कहाँ' क्रिया से पहले आए हैं, किंतु जिस 'क्या' का उत्तर 'हाँ' या 'ना' में हो, वह वाक्य के प्रारंभ में आते हैं।

क्या तुम जाओगे ? क्या तुम्हें खाना खाना है ?

९) प्रश्नवाचक या कोई अन्य सर्वनाम जब विशेषण के रूप में प्रयुक्त हो, तो संज्ञा से पहले आएगा; जैसे : -

यहाँ कितनी किताबें हैं ? कौन आदमी आया है ?

इन वाक्यों में 'यहाँ' तथा 'कौन' प्रश्नवाचक सर्वनाम विशेषण के रूप में प्रयुक्त होकर क्रमशः 'किताब' तथा 'आदमी' (संज्ञा) से पहले आए हैं।

१०) संबोधन तथा विस्मयाधिबोधक शब्द प्रायः वाक्य के आरंभ में आते है; जैसे : -

अरे रमा! तुम यहाँ कैसे ? ओह! मैं तो भूल गए

११) संबंधबोधक अव्यय तथा परसर्ग संज्ञा और सर्वनाम के बाद आते है; जैसे : -

राम को जाना है। उसको भेज दो।
वह मित्रों के साथ घूमने गया है।

उपर्युक्त वाक्यों में 'को' तथा 'के' परसर्ग संज्ञा व सर्वनाम राम, उस तथा मित्र के बाद आए है।

१२) पूर्वकालिक 'कर' धातु के पीछे जुड़ता है; जैसे - छोड् + कर = छोड्कर। इसके अलावा पूर्वकालिक क्रिया, मुख्य क्रिया से पहले आती है; जैसे : -

वह खाकर सो गया। वह आकर पढ़ेगा।

१३) भी, तो, ही, भर, तक आदि अव्यय उन्हीं शब्दों के पीछे लगते हैं, जिनके विषय में वे निश्चय प्रकट करते हैं; जैसे : -

मैं तो (भी, ही) घर गया था।
मैं घर भी (ही) गया था।

इन दोनों वाक्यों में अव्यय 'तो', 'भी' तथा 'ही' क्रमशः 'मैं' और 'घर' के विषय में निश्चय प्रकट कर रहे हैं। इसलिए उनके पीछे लगे हुए हैं।

१४) यदि ...... तो, जब .... तब, जहाँ ...... वहाँ, ज्योंहि ...... त्योंहि आदि नित्य संबंधी अव्ययों में प्रथम प्रधान वाक्य के पहले तथा दूसरा आश्रित वाक्य के पहले लगता हैं; जैसे -

जहाँ चाहते हो, वहाँ जाओ।
जब आप आएँगे, तब वह जा चुका होगा।

इन वाक्यों में 'जहाँ' और 'जब' प्रधान वाक्य के पहले तथा 'वहाँ' और 'तब' दूसरे आश्रित उपवाक्य के पहले लगे हैं।

१५) समुच्चयबोधक अव्यय दो शब्दों या वाक्यों के बीच में आता है। तीन समान शब्द या वाक्य हों तो 'और' अंतिम से पहले आता है; जैसे : -

दिनेश तो जा रहा है, लेकिन रमेश नहीं।

सीता, गीता और रमा तीनों ही आएँगी।

पहले वाक्य में समुच्चयबोधक अव्यय 'लेकिन' दो वाक्यों के बीच में आया है तथा दूसरे वाक्य में समुच्चयबोधक अव्यय 'और' तीन शब्द होने के कारण से अंतिम से पहले आया है।

१६) वाक्य में विविध अंगों में तर्कसंगत निकटता होनी चाहिए; जैसे : -

एक पानी का गिलास लाओ।

इस वाक्य में 'एक पानी' निरर्थक है; 'पानी का एक गिलास लाओ', सार्थक है।

२) पदों का अन्वय एवं दोष :

कर्ता, क्रम और क्रिया का अन्वय

१) यदि कर्ता के साथ कारक चिह्न या परसर्ग न हो, तो क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार होगा; जैसे : -

राधा खाना बनाती है। शीला पुस्तक पढ़ती है।

२) यदि कर्ता के साथ परसर्ग हो, तो क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होगा; जैसे : -

राम ने पुस्तक पढ़ी। रमा ने भोजन पकाया।

३) यदि कर्ता और कर्म दोनों के साथ परसर्ग हो, तो क्रिया सदा पुल्लिंग, अन्य पुरुष, एकवचन में रहती है; जैसे : -

पुलिस ने चोर को पीटा।

४) एक ही तरह का अर्थ देने वाले अनेक कर्ता एकवचन में और परसर्ग रहित हों, तो क्रिया एकवचन में होगी; जैसे : -

यमुना की बाढ़ में उसका घर-बार और गाल असबाब बह गए।

५) यदि एक से अधिक भिन्न-भिन्न कर्ता, परसर्ग रहित हों, तो क्रिया बहुवचन में होगी; जैसे :

रमा और श्यामा नाच रही थीं। राम और श्याम गा रहे थे।

६) यदि एक से अधिक भिन्न कर्ता, परसर्ग रहित हो तो क्रिया बहुवचन में होगी; जैसे : -
सीता और राधा पढ़ रही थी। राकेश और मोहन जा रहे थे।

७) यदि एक से अधिक भिन्न कर्ता लिंगो में हो, तो क्रिया अंतिम कर्ता के लिंगानुसार होगी
माँ और बेटा आए। उसके पास एक पजामा, और दो कमीजे थीं।

सबंध और संबंधी का अन्वय :

१) का, के, की, संबंधीवाची विशेषण परसर्ग है। इनका लिंग वचन और कारकीय रूप वही होता है, जो उत्तरपद (संबंधी) का होता है; जैसे : -

शीला की घड़ी।, राजू का रुमाल।, रमा के कपड़े।

२) यदि संबंधी पद अनेक हों, तो संबंधीवाची विशेषण परसर्ग पहले संबंधी के अनुसार होता है; जैसे : -
शीला की बहन और भाई जा रहे थे।

ऐसे में परसर्गों को दोहराया भी जा सकता है; जैसे : शीला की बहन और उसका भाई जा रहे थे।

संज्ञा और सर्वनाम का अन्वय :

१) सर्वनाम का वचन और पुरुष उस संज्ञा के अनुरुप होना चाहिए, जिसके स्थान पर उसका प्रयोग हो रहा हो; जैसे : -
राधा ने कहा कि वह अवश्य आएगी।
अध्यापक आए तो उनके हाथ में पुस्तकें थीं।

२) हम, तुम, आप, वे, ये आदि का अर्थ की दृष्टि से एकवचन के लिए भी प्रयोग होता है, किंतु इनका रूप बहुवचन ही रहता है; जैसे : -
आप कहाँ जा रहे हो ? लड़के ने कहा, “हम भी चलेंगे।”

विशेषण और विशेष्य का अन्वय :

१) विशेषण का लिंग और वचन, विशेष्य के अनुसार होता है, जैसे : -
अच्छी साड़ी, छोटा बच्चा, काला घोड़ा, काला चना

२) यदि अनेक विशेष्यों का एक विशेषण हो, तो उस विशेषण के लिंग, वचन और कारकीय रूप तुरंत बाद में आने वाले विशेष्य के अनुसार होंगे; जैसे : -
पुराने पलंग और चारपाई बेच दी।

३) यदि एक विशेष्य के अनेक विशेषण हों, तो वे सभी विशेष्य के अनुसार होंगे; जैसे : -
सस्ती और अच्छी किताबें।
गंदे और मैले - कुचैले कपड़े।

पदक्रम और वाक्यों की अशुद्धियाँ

वाक्यों में प्रत्येक शब्द, व्याकरण के नियमों के अनुसार सही क्रम में होना चाहिए। कर्ता, कर्म और क्रिया को उपयुक्त स्थानों पर रखना अनेक आवश्यक है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

१) क्रम दोष :

मिश्र वाक्य में प्रधान वाक्य तथा उसके अन्य उपवाक्यों को ठीक क्रम में न रखने पर वाक्य अशुद्ध हो जाता है। जैसे :

अशुद्ध - मैंने उस घने जंगल में अनेक पशु और पक्षी उड़ते और चरते देखे।
शुद्ध - मैंने उस घने जंगल में अनेक पशु और पक्षी चरते और उड़ते देखें।

२) पुनरुक्ति दोष :

एक ही वाक्य में एक शब्द का एक से अधिक बार प्रयोग अथवा पर्यायवाची शब्द का प्रयोग भी दोषपूर्ण हो जाता है और आड़ंबर की रूचि सूचित करता है; जैसे : -

अशुद्ध - राधा मेरी परम प्रिय स्नेही है।
शुद्ध - राधा मेरी परम प्रिय है।

३) संज्ञा संबंधी अशुद्धियों :

हम संज्ञा को प्रयुक्त करते समय उसके सही अर्थ से अनभिज्ञ, अपने कथन को प्रभावशाली बनाने के लिए उसका अशुद्ध प्रयोग कर जाते है।

अशुद्ध : जीवन और साहित्य का घोर संबंध है।
शुद्ध : जीवन और साहित्य का घनिष्ठ संबंध है।

४) लिंग संबंधी अशुद्धियाँ :

लिंग के प्रयोग में भी सामान्य रूप से अशुद्धियाँ देखने को मिलती है; जैसे :

अशुद्ध : राजू ने मुझे मथुरा दिखाई।
शुद्ध : राजू ने मुझे मथुरा दिखाया।

५) वचन संबंधी अशुद्धियाँ :

वचन के प्रयोग में असावधानी के कारण अनेक अशुद्धियाँ देखने को मिलती है।

अशुद्ध : तुम इसका दाम देते जाओ।
शुद्ध : तुम इसके दाम देते जाओ।

६) सर्वनाम संबंधी अशुद्धियाँ

सर्वनाम संबंधी अनेक अशुद्धियाँ देखने को मिलती है। सर्वनाम को यथास्थान प्रयोग न करना, सर्वनामों का अधिक प्रयोग करना या गलत सर्वनामों का प्रयोग करना प्रायः देखा गया है जैसे :

अशुद्ध : इनने आपका घर देखा है।
शुद्ध : इन्होंने आपका घर देखा है।

७) विशेषण संबंधी अशुद्धियाँ :

विशेषणों का अनावश्यक, अनुपयुक्त तथा अनियमित प्रयोग से वाक्य अशुद्ध होता है। जैसे : -

अशुद्ध : एक दूध का गिलास दो।
शुद्ध : दूध का एक गिलास दो।

८) क्रिया संबंधी अशुद्धियाँ

क्रियापदों का अनावश्यक प्रयोग, आवश्यकता के समय प्रयोग न करना, अनुपयुक्त क्रियापदों का प्रयोग, सहायक क्रिया में अशुद्धि आदि होती है।

अशुद्ध : आप यह कंबल पहन लें।
शुद्ध : आप यह कंबल ओढ़ लें।

९) क्रियाविशेषण संबंधी अशुद्धियाँ :

क्रिया विशेषण का अनावश्यक अशुद्ध, अनुपयुक्त तथा अनियमित प्रयोग भाषा का अशुद्ध बनाता है।

अशुद्ध : जैसा करोगे, उतना ही भरोगे।
शुद्ध : जैसा करोगे, वैसा ही भरोगे।

१०) कारकीय परसर्गों की अशुद्धियाँ

सामान्य रूप से 'ने', 'को', 'के', द्वारा 'ने', 'पर', 'का', 'के', 'के लिए' आदि परसर्गों के गलत प्रयोग से अशुद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे : -

अशुद्ध : शीला ने पढ़ती है।
शुद्ध : शीला पढ़ती है।

११) मुहावरे संबंधी अशुद्धियाँ

मुहावरों में अशुद्धियाँ उन्हें विकृत और हास्यापद बना देता है।

अशुद्ध : उसके तो सारे इरादों पर पानी बह गया।
शुद्ध : उसके तो सारे इरादों पर पानी फिर गया।

७.५ वाक्य के भेद

वाक्य : जब भी हमें अपने मन की बात दूसरों तक पहुँचानी होती है या किसी से बातचीत करनी होती है तो हम वाक्यों का सहारा लेकर ही बोलते हैं।

परिभाषा :

"ऐसा सार्थक शब्द - समुह, जो व्यवस्थित हो तथा पूरा आशय प्रकट करे, वाक्य कहलाता है।"

कामता प्रसाद के अनुसार "एक पूर्ण विचार व्यक्त करने वाला शब्द-समुह वाक्य कहलाता है।"

बद्रीनाथ कपूर के अनुसार "भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई है जिसके द्वारा कोई बात कही गई है।"

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार "भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक ईकाई वाक्य है।"

वाक्य के अंग :

प्रत्येक वाक्य के दो खंड अथवा अंग होते है - कर्ता और क्रिया। कर्ता और क्रिया के विस्तार को 'उद्देश्य और विधेय' कहा जाता है।

उद्देश्य वाक्य में कर्ता या उसके विस्तार या जिस व्यक्ति या वस्तु के बारें में कहा जाए उसे उद्देश्य कहते हैं।

विधेय वाक्य में कर्ता या उद्देश्य के बारे में कुछ भी कहा जाए उसे विधेय कहते हैं।

७.५.१ अर्थ के आधार पर वाक्य के भेद :

वाक्य में कोई सूचना दी जा रही है, या नकारात्मकता का भाव है, प्रश्न पूछा जा रहा है या विस्मय प्रकट किया जा रहा है, काम करने का आदेश दिया जा रहा है या इच्छा प्रकट की जा रही, इसे ही अर्थ कहते है। इस आधार पर वाक्य के निम्नलिखित आठ भेद होते हैं।

१) विधानवाचक वाक्य
२) प्रश्नवाचक वाक्य
३) आज्ञावाचक वाक्य
४) संदेहवाचक वाक्य
५) नकारात्मक वाक्य
६) इच्छावाचक वाक्य
७) विस्मयवाचक वाक्य
८) संकेतवाचक वाक्य

१) विधानवाचक वाक्य :

जिस वाक्य में क्रिया होने या करने की सूचना मिलती हो या इस प्रकार का सामान्य कथन हो, उसे विधानवाचक वाक्य कहते हैं। विधानवाचक वाक्य को सकारात्मक वाक्य भी कहा जाता है क्योंकि इस प्रकार के वाक्यों में कही गई बात को ज्यों का त्यों मान लिया जाता है।

उदाहरण :

i. पक्षी घोंसले से उड़ चुके हैं।
ii. कविता ने पाठ याद कर लिया है।
iii. नदी में बाढ़ आई है।
iv. रोहित ने नया मकान खरीदा।

२) प्रश्नवाचक वाक्य :

जिन वाक्यों में प्रश्न पूछा जाता है तथा जिनमें कुछ उत्तर पाने की जिज्ञासा रहती है, उसे प्रश्नवाचक वाक्य कहते हैं -

प्रश्नवाचक वाक्यों की पहचान

१) क्या, कब, क्यों, कैसे, कौन, किसे, किसका आदि प्रश्नवाचक शब्द देखकर
२) वाक्य के अंत में लगे प्रश्नवाचक चिन्ह (?) को देखकर की जाती है।

उदाहरण :

i. रमा कब आई ?
ii. कल तुमने क्या क्या खाया था ?
iii. विक्रम किसकी राह देख रहा था ?
iv. ऐसी धूप में बाहर कौन खड़ा है ?

३) आज्ञावाचक वाक्य :

जिन वाक्यों में आज्ञा या अनुमति देने-लेने का भाव प्रकट होता है, उसे आज्ञावाचक वाक्य कहते हैं। इन वाक्यों का दूसरा नाम आज्ञासूचक या विधिवाचक वाक्य भी है।

उदाहरण :

i. किताब के पेज मत फाड़ो।
ii. दिवारों को साफ कर दो।
iii. किसलय, अब पढ़ने बैठ जाओ।
iv. अपने जन्मदिन पर एक पौधा लगाना।

४) संदेहवाचक वाक्य :

जिन वाक्यों की क्रिया पूर्ण होने में संदेह होता है, उन्हें संदेहवाचक वाक्य कहते हैं।
संदेहवाचक वाक्यों की पहचान :

अ) वाक्य के अंत में 'होगी', 'होगा', 'होंगे' देखकर।
आ) शायद, संभवतः जैसे शब्द देखकर की जा सकती है।

उदाहरण :

i. दीपक बुझ गया होगा।
ii. अब शायद बारिश बंद हो जाए।
iii. रमा खाना पका चुकी होगी।

५) नकारात्मक वाक्य

जिन वाक्यों से क्रिया न होने या न किए जाने का भाव प्रकट होता है, उसे नकारात्मक वाक्य कहते हैं।

उदाहरण :

i. रोहन धूप में न निकलना।
ii. नदी में बाढ़ नहीं आई है।
iii. पक्षी घोंसले से नहीं उडे है।

६) इच्छावाचक वाक्य

जिन वाक्यों में वक्ता की इच्छा, कामना, आर्शीवाद आदि का भाव प्रकट होता है, उन्हें इच्छावाचक वाक्य कहते हैं।

उदाहरण :

i. ईश्वर करें, आप खूब उन्नति करें।
ii. मैं चाहता हूँ सभी स्वस्थ रहें।

७) विस्मयवाचक वाक्य

विस्मय का अर्थ है - आश्चर्य! जिन वाक्यों से आश्चर्य, हर्ष, घृणा, प्रसन्नता, शोक, दु:ख, भय आदि भावों की अभिव्यक्ति हों उन्हें विस्मयवाचक वाक्य कहते हैं। इन वाक्यों का दूसरा नाम उद्धारवाचक वाक्य भी है।

विस्मयवाचक वाक्यों की पहचान :

१) वाक्य में अहो!, अहा! हाय!, छि:! अरे! आदि देखकर।
२) ऐसे वाक्यों या शब्दों के अंत में लगा विस्मय चिन्ह (!) को देखकर की जा सकती है।

उदाहरण :

i. ओह! तुम आ गए।
ii. छि:! नाले के पास बदबू है।

८) संकेतवाचक वाक्य

जिन वाक्यों में एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया पर निर्भर करता है, उन्हें संकेतवाचक वाक्य कहते है। इस प्रकार के वाक्यों में काम पूरा होन के लिए शर्त-सी लगी होती है।

संकेतवाचक वाक्य के पहचान आदि, अगर, यदि जैसे शब्द देखकर की जा सकती है।

उदाहरण :

i. यदि वर्षा रुकती तो मैं घर जाता।
ii. अगर परिश्रम करोगे तो अवश्य सफल होंगे।
iii. अगर जल्दी आते तो टिकट मिलता
iv. यदि सिंचाई की गई होती तो फसलें न सूखती।

७.५.२ रचना के आधार पर वाक्य के भेद :

रचना के आधार पर वाक्य के मुख्य तीन भेद हैं।

१) सरल या साधारण वाक्य
२) संयुक्त वाक्य या यौगिक वाक्य
३) जटिल या मिश्र वाक्य

१) सरल या साधारण वाक्य (Simple Sentence) :

जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक ही विधेय हो, उसे सरल या साधारण वाक्य कहा जाता है; जैसे :-

क) राम बाजार जा रहा है।
ख) वह पुस्तक पढ़ रहा है।

उपर्युक्त वाक्यों में 'राम' तथा 'पुस्तक' कर्ता हैं तथा 'जा रहा है' तथा 'पढ़ रहा है' क्रिया है। एक ही कर्ता तथा एक ही क्रिया होने के कारण ये सरल वाक्य है।

सरल वाक्य में कर्ता और क्रिया के अलावा कर्म तथा उनके पूरक भी सम्मिलित किए जा सकते हैं।

१) राहूल पढ़ा। (कर्ता - क्रिया)
२) राहुल पढ़ रहा है। (कर्ता-क्रिया -विस्तार)
३) पड़ोस में रहने वाला राहुल पढ़ रहा है। (विस्तार कर्ता - क्रिया - विस्तार)
४) राहुल ने पुस्तक पढ़ी। (कर्ता - कर्म - क्रिया)
५) राहुल ने मित्र को पुस्तक दी। (कर्ता-कर्म-कर्म क्रिया)
६) राहुल ने अपने प्रिय मित्र को कहानी की पुस्तके दी। (कर्ता-कर्म का विस्तार, कर्म-कर्म का विस्तार - कर्म क्रिया)

२) संयुक्त वाक्य या यौगिक वाक्य (Compound Sentence) :

जिस वाक्य में दो या दो से अधिक सरल अथवा मिश्र वाक्य योजकों द्वारा जुड़े हों उन्हें 'संयुक्त वाक्य या यौगिक वाक्य कहते हैं।' संयोजक द्वारा जुड़ै रहने पर भी प्रत्येक वाक्य अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। एक-दुसरे पर आश्रित नहीं रहता। ये 'समानाधिकरण वाक्य' कहलाते हैं। इसमें समुच्यबोधक अव्यय का प्रयोग संयोजक रूप में विभाजक रूप में, विरोधदर्शक रूप में और परिणामबोधक रूप में होता है। जैसे :

क) कंडक्टर ने सीटी बजाई और बस चल पड़ी। (संयोजक)
ख) आप पहले आराम करेंगे या आप के लिए खाना ले आऊं। (विभाजक)
ग) मैं आप का काम अवश्य कर देता लेकिन क्या करुँ व्यस्त हूँ। (विरोधदर्शक)
घ) उसने बहुत मेहनत की थी इसलिए वह कक्षा में प्रथम आया। (परिणाम बोधक)

३) जटिल या मिश्र वाक्य (Complex Sentence) :

जिस वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य के साथ एक या एक से अधिक आश्रित उपवाक्य जुड़े हों उसे जटिल या मिश्र वाक्य कहा जाता है; जैसे : -

क) वह कौन-सा क्षेत्र है जहाँ महिलाओं ने अपना कदम नहीं रखा ?
ख) गहन-से-गहन संकट हो फिर भी वह हँसता रहता है।

वाक्य रूपांतरण :

वाक्य जब अपना एक रूप से दूसरा रूप परिवर्तित करता है, तब वाक्य रूपातंरण होता है। इस प्रकार किसी भी एक प्रकार के वाक्य को दूसरे प्रकार के वाक्य में बदलने की प्रक्रिया को वाक्य - रुपांतरण कहा जाता है। वाक्य को परिवर्तित करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि उसके अर्थ में किसी तरह का कोई परिवर्तन न आया हो।

उदाहरण :
सरल वाक्य - साहसी विद्‌यार्थी उन्नति करते हैं।
मिश्र वाक्य - जो विद्‌यार्थी साहसी होते हैं, वे उन्नति करते हैं।

सरल वाक्य - संतोषी आदमी जंगल में मंगल मनाते हैं।
मिश्र वाक्य - जो संतोषी होते है, वे जंगल में मंगल मनाते हैं।

मिश्र वाक्य - संकट आ जाए, तो घबराना उचित नहीं।
सरल वाक्य - संकट आने पर घबराना उचित नहीं।

मिश्र वाक्य - अगर चीफ का साक्षात माँ से हो गया, तो कहीं लज्जित न होना पड़े।
सरल वाक्य - चीफ का साक्षात माँ से होने पर कहीं लज्जित न होना पड़े।

मिश्र वाक्य : मैं नहीं जानता कि उसका जन्म कहाँ हुआ हैं ?
सरल वाक्य : मैं उसका जन्म - स्थान नहीं जानता।

सरल वाक्य - सुरेश के आ जाने से सब प्रसन्न हो गए।
संयुक्त वाक्य - सुरेश आ गया, अतः सब प्रसन्न हो गए।

सरल वाक्य - सूर्य के छिपने पर अँधेरा छा गया।
संयुक्त वाक्य - सूर्य छिपा और अँधेरा छा गया।

सरल वाक्य - भोर होते - होत हम गोवा पहुँचे।
संयुक्त वाक्य - भोर हुई और हम लोग गोवा पहुँचे।

७.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने व्याकरण से संबंधित पद, पदक्रम, उसकी परिभाषा, वाक्य के भेद आदि का अध्ययन किया। व्याकरण भाषा के अध्ययन का महत्वपूर्ण हिस्सा तथा भाग हैं। इसी व्याकरण से भाषा को शुद्‌ध बोला, पढ़ा और शुध्द् लिखा जाता है। भाषा की सुंदरता एवं शुद्धता को बनाए रखने के लिए व्याकरण के नियमों का पालन करना आवश्यक होता है। यह इस इकाई के माध्यम विद्यार्थी जान सकें।

७.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) ‘पद’ किसे कहाँ जाता है ?
२) शब्द के मुख्यत: भेद कितने हैं ?
३) पदक्रम का दुसरा नाम क्या हैं ?
४) संबंधीवाची विशेषण परसर्ग है।
५) अर्थ के आधार पर वाक्य के भेद कितने हैं ?
६) “भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है।” यह परिभाषा किस विद्वान की है ?
७) रचना के आधार पर वाक्य के मुख्य भेद कितने ?
८) ‘वाक्य रूपांतरण’ किसे कहा जाता है ?

७.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) पद की परिभाषा देकर पद के भेद की विस्तार से चर्चा कीजिए।
२) पदक्रम की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए पदक्रम की रचना पर प्रकाश डालिए।
३) वाक्य की परिभाषा और उसके भेद को विस्तार से स्पष्ट कीजिए।

७.९ संदर्भ पुस्तकें

१) हिंदी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
२) हिंदी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु
३) हिंदी भाषा, व्याकरण और रचना - डॉ. अर्जुन तिवारी
४) हिंदी व्याकरण प्रकाश - डॉ. महेंद्र कुमार राना

❖❖❖❖